जैनपर्व चर्चा

– डॉ. प्रवीणकुमार जैन

समर्पण द्वारा प्रकाशित साहित्य

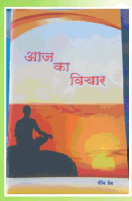

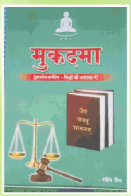

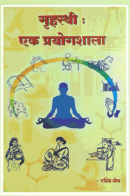

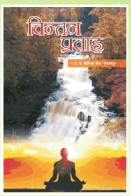

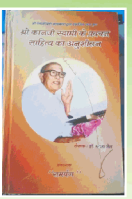

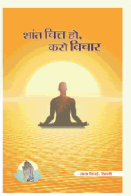

समर्पण का मासिक प्रकाशन संस्कार सुधा

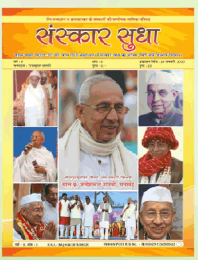

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट का 30 वाँ पुष्प

जैनपर्व चर्चा

(जैनपर्व+जयन्ती महोत्सव+लौकिक पर्वों का आध्यात्मीकरण
आदि विषयों पर मननीय-आलेखों का महत्त्वपूर्ण-संग्रह)

लेखक

डॉ. प्रवीणकुमार जैन

प्राचार्य - आचार्य अकलंकदेव जैन न्याय महाविद्यालय, ध्रुवधाम बांसवाड़ा (राज.)
शास्त्री, एम.ए. द्वय (संस्कृत, हिन्दी), आचार्यद्वय (जैनदर्शन, प्राकृत-जैनागम-अपभ्रंश)
बी.एड., बी.जे. (एम.सी.), नेट, पी.एच.डी. (तीन लोक)
सम्पादक (ध्रुवधाम मासिक पत्रिका)

प्रकाशक

समर्पण

18, आदिनाथ कॉलोनी, केशवनगर, उदयपुर (राज.)
मो. 91-9414103492

प्रथम संस्करण : 1100 प्रतियाँ
(श्रावण कृष्ण एकम 'वीर शासन जयन्ती' - 6.7.2020)

प्राप्ति स्थान : **शाश्वतधाम, उदयपुर (राज.)**
मो. 91-9414103492
: **रत्नत्रयतीर्थ 'ध्रुवधाम', बांसवाड़ा (राज.)**
मो. 91-7726888399
: **दिनेश शास्त्री, जयपुर**
मो. 91-9928517346

साहित्य प्रकाशन हेतु सहयोग राशि : 40 रुपये

मुद्रक : देशना (दिनेश) कम्प्यूटर्स
मालवीया इण्डस्ट्रियल एरिया, जयपुर
मो. 9928517346

प्रस्तुत प्रकाशन में सहयोग करने वाले महानुभाव

1. श्री रोशनलाल भंवरदेवी जैन फांदोत, उदयपुर	2100/-
2. श्री रमेश-श्रुत वालावत	2100/-
3. गुप्तदान	2000/-
4. श्री विद्या-सागर जैन, उदयपुर	2000/-
5. डॉ. ममता जैन, शाश्वतधाम, उदयपुर	1100/-
6. गुप्तदान	1100/-
7. सुशीलकुमार अजमेरा, खम्मम, तेलंगाना	1100/-
8. श्री राजेन्द्रकुमार बैनाड़ा, उदयपुर	1100/-
9. श्री नेमिचन्द चंपालाल भोरावत चेरीटेबल ट्रस्ट, उदयपुर	1100/-
10. श्रीमती भागवती जैन ध.प.स्व.श्री प्रेमचन्द जैन, बड़ामलहरा	1100/-
11. पण्डित अमित 'अरिहन्त' शास्त्री, मड़ावरा	250/-

प्रकाशकीय

'समर्पण' द्वारा आप सभी के सहयोग से सर्वोपयोगी साहित्य को प्रकाशित कर पाठकों तक पहुँचाने का प्रयास किया जा रहा है।

इसी क्रम में ध्रुवधाम के संपादक, उदीयमान लेखक **डॉ. प्रवीणकुमार जैन** द्वारा संपादकीय के रूप में जैनपर्वों के संबंध में आगम के आधार से तार्किक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। इन लेखों को यदि पुस्तकाकार प्रकाशित कर समाज को उपलब्ध कराया जाये तो पाठक अवश्य लाभान्वित होंगे, इस भावना से **'समर्पण'** के 30 वें पुष्प के रूप में **'जैनपर्व चर्चा'** पुस्तक प्रकाशित की जा रही है।

भाई प्रवीणजी ने हमें प्रकाशन हेतु सहर्ष स्वीकृति प्रदान की एतदर्थ **'समर्पण'** परिवार आभार व्यक्त करते हुए आशा करता है कि आपके द्वारा इसी तरह शोध-खोज पूर्ण साहित्य आगे भी प्राप्त होता रहेगा।

'समर्पण' द्वारा प्रकाशित साहित्य के प्रकाशन सहयोग हेतु पाठकों द्वारा अधिकांश अर्थ सहयोग पहले ही प्राप्त हो जाता है, अतः अधिकतर साहित्य **'जो चाहो ले जाओ, जो चाहो दे जाओ'** के आधार पर जाता है। अनेक साधर्मी अधिक संख्या में साहित्य लेते हैं तो सहयोग राशि भी प्रदान करते हैं, वह राशि जिन प्रकाशनों में सहयोग कम आता है, उनके प्रकाशन में व्यय हो जाता है।

पाँच वर्ष की अल्पावधि में 29 पुष्प प्रकाशित होना एवं उनका समाप्त होना हमारे लिए एक बहुत बड़ी उपलब्धि है।

इस पुस्तक के प्रकाशन में जिन्होंने अर्थ सहयोग प्रदान किया है, उन्हें धन्यवाद। पुस्तक के आकर्षक मुद्रण हेतु श्री दिनेश जैन-देशना कम्प्यूटर्स जयपुर को भी साधुवाद देते हैं, जो कम समय में हमारी इच्छानुसार प्रकाशन में सहयोग प्रदान करते हैं।

आप पुस्तक पढ़कर जो भी आपके भाव हों, वह लेखक के मोबाईल 7726888399 पर अवश्य ही सूचित कीजिए। धन्यवाद।

निवेदक : **'समर्पण' चैरिटेबल ट्रस्ट, उदयपुर**

मोबा. 9414103492

अंतर्मन

हमारा भारत देश पर्व प्रधान है। यहाँ वार्षिक कैलेण्डर में जितने दिन होते हैं, उनसे भी ज्यादा पर्व व त्यौहारों का प्रचलन है। यदि उनमें जैनेतर पर्वों को गौण भी किया जाए तो मात्र जैन पर्वों की संख्या भी कुछ कम नहीं। जैन समाज के लोग इन पर्वों को बड़ी ही धूमधाम से मनाते हैं।

वास्तव में देखा जाए तो हमारे जैन पर्वों ने देश की सभ्यता व संस्कृति को संस्कारित किया है। यदि गहराई में जाकर देखें तो पता चले कि जैनपर्व साम्प्रदायिकता की गंध से परे होते हैं। इन पर्वों में व्यक्तिगत, सामाजिक, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय तो ठीक; किन्तु वैश्विक उन्नयन का भाव सर्वत्र और सर्वदा दर्शनीय है।

इतनी विशेषताएँ होने पर भी बहुसंख्यक अन्य संस्कृतियों की परछाँई से जैन पर्वों का मूल स्वरूप आच्छादित सा हो गया है तथा जैन व जैनेतर समुदाय में निजी मान्यताएँ व घटनाएँ अलग-अलग होने पर भी पर्वों की तिथियाँ समान होने से दीपावली, रक्षाबंधन व अक्षय तृतीया जैसे पर्व एकमेक से हो गए हैं। इतना ही नहीं, जिन पर्वों का जैनधर्म से कोई संबंध नहीं, वे भी जैनियों की संतति में सहज समाहित हो जाने से बहुसंख्यक जैन समाज को तो जैन-जैनेतर पर्वों के बीच भेदज्ञान ही नहीं; कदाचित् किन्हीं को थोड़ा है भी तो जैन पर्वों के रहस्य व उनके महत्त्व की पहिचान नहीं।

ऐसा जानकर जैन पर्वों के विषय में स्वयं की मान्यता दृढ़ करने व इस विषय से अनभिज्ञ साधर्मी जनों को पर्वों के मूल तथ्यों से अवगत कराने तथा पर्वों को मनाने की बाह्याडंबररूप पद्धति व उनमें होने वाले व्यर्थ के अनर्थदण्ड-स्वरूप आरंभ से निवृत्ति के उद्देश्य से एक अहिंसात्मक सार्थक पर्वों का सभी के जीवन में समावेश हो, तदर्थ इस '**जैनपर्व चर्चा**' कृति के कृतित्व का निर्णय अंतर्मन में प्रस्फुटित हुआ।

चूँकि इस कृति रचना के निर्णय से पूर्व ही पर्वों संबंधी लेख शृंखला ध्रुवधाम मासिक पत्रिका में संपादकीयरूप में चल चुकी थी; बस इंतजार था इन लेखों के व्यवस्थित पुस्तकाकाररूप प्रकाशन का; जिसकी पूर्ति समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट के अध्यक्ष आदरणीय पण्डित राजकुमारजी शास्त्री उदयपुर ने कर दी। उनकी समर्पण ट्रस्ट से प्रकाशित करने की भावना व ध्रुवधाम संस्था के अध्यक्ष आदरणीय श्री महीपालजी ज्ञायक की सहज स्वीकृति व

सराहना से इस कृति के लोकार्पण का काल पक गया।

पाठकों को ज्ञात हो कि प्रस्तुत कृति के लेखों में आगम को मूलाधार बनाकर, कहीं तर्क शैली; कहीं व्यंग्य शैली तो कहीं दार्शनिक शैली की छटा के साथ स्वरचित उक्तियों का प्रयोग तथा अध्ययन से सहज उद्भूत निजी चिंतन देने का प्रयास किया है। विशेष बात यह है कि इन लेखों में पर्वों से संबंधित मूल घटना के निकटवर्ती होकर, उनमें विद्यमान निहितार्थों को ग्रासीभूत कर उनसे सीखने योग्य मुख्य तथ्यों को उजागर करते हुए यथा आवश्यक शुभ भावानुरूप शुभ क्रियाओं की प्रेरणा; किन्तु उन क्रियाओं में धर्मबुद्धि के निषेध के साथ आध्यात्मिक शैली पर बल दिया गया है।

यद्यपि इन पर्वों संबंधी घटनाओं के संग्रह हेतु विविध प्रकार के आधुनिक साहित्य के अध्ययन के निचोड़ के साथ उनकी प्रामाणिकता की पुष्टि हेतु प्राचीन जैन साहित्य पुराण, जैसे तिलोयपण्णती, त्रिलोकसार, षट्खण्डागम, हरिवंशपुराण, उत्तरपुराण, महापुराण व पद्मपुराण आदि अनेकविध ग्रन्थों का आश्रय लिया गया है; तथापि अल्पबुद्धि व कथंचित् प्रमादवश प्रस्तुत कृति में कमियाँ व गलतियाँ होना स्वाभाविक हैं। अतः प्रबुद्ध वर्ग से विनम्र अनुरोध है कि वे निःसंकोच, कमियों से हमें अवगत कराएँ, जिनको शिरोधार्य कर आगामी प्रकाशनों में संशोधन कर दिया जाए; जिससे आगामी पीढ़ी पर्वों के सही मर्म को समझ कर, उनसे यथार्थ तथ्य ग्रहण कर सके।

अंत में पुनः समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट का तथा उनके समस्त पदाधिकारियों का आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस '**जैनपर्व चर्चा**' कृति का लोकार्पण किया। साथ ही श्री टोडरमल स्मारक जयपुर व वहाँ की गुरु परंपरा को कभी नहीं भूल सकता, जिनकी छत्रछाया में रहकर इस तरह के रचनात्मक कार्य करके जिनवाणी की सेवा में समर्थ हो पाया हूँ।

इनके अतिरिक्त आदरणीय ज्योतिषाचार्य श्री प्रकाश दादा मैनपुरी के निर्देशन में अनुज भ्राता पण्डित अनिलजी शास्त्री (खनियांधाना) जयपुर वालों ने आगामी वर्षों की पर्व तिथियाँ आधुनिक कैलेण्डर के अनुसार निकालीं; अतः दोनों विद्वानों को धन्यवाद। इन्हीं के साथ श्री दिनेशजी शास्त्री (देशना कम्प्यूटर्स) जयपुर का भी आभारी हूँ, जिन्होंने इस कृति को सुन्दररूप प्रदान करने में समर्पण के साथ सहयोग किया।

बस, आशा और विश्वास के साथ कि साधर्मीजन इस कृति का भरपूर लाभ लेंगे तथा पर्वों का सही स्वरूप जानकर अपने जीवन को व पर्व मनाने की पद्धति को सार्थक करेंगे-इसी भावना के साथ विराम। - **डॉ. प्रवीण शास्त्री**

समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट : एक परिचय

देव-धर्म-गुरु के चरणों में तन-मन-धन सब अर्पण।
आतमहित व तत्त्वज्ञान को, है सर्वस्व समर्पण।।

ट्रस्ट का नाम - समर्पण चैरिटेबल ट्रस्ट | **स्थापना तिथि** - 20 सितम्बर 2014

ट्रस्ट मण्डल - संरक्षक : 1. श्री अजित जैन बड़ौदा, 2. श्री चन्द्रभान जैन घुवारा, 3. श्री कन्हैयालाल दलावत, 4. श्री ताराचन्द जैन उदयपुर, 5. श्री प्रकाशचन्द छाबड़ा सूरत, 6. श्री ललितकुमार किकावत लूणदा।

अध्यक्ष - राजकुमार शास्त्री उदयपुर, **उपाध्यक्ष** - अजितकुमार शास्त्री अलवर, **कोषाध्यक्ष** - रमेशचन्द वालावत उदयपुर, **मंत्री** - डॉ. ममता जैन उदयपुर, **सहमंत्री** - पीयूष शास्त्री जयपुर, **ट्रस्टी** - पण्डित अशोकुमार लुहाड़िया तीर्थधाम मंगलायतन अलीगढ़, ऋषभकुमार शास्त्री छिन्दवाड़ा, डॉ. महेश जैन भोपाल, रतनचन्द शास्त्री कोटा, इंजी. सुनील जैन छतरपुर, गणतंत्र 'ओजस्वी' आगरा।

ट्रस्ट की सामान्य रूपरेखा - उद्देश्य : 1. तत्त्वज्ञान, अहिंसा, शाकाहार, सदाचार का प्रचार करना। 2. सामाजिक विकृतियों के विरुद्ध जागरुकता पैदा करना। 3. अनुपलब्ध, आवश्यक व नये लेखकों का श्रेष्ठ साहित्य प्रकाशित करना। 4. सर्वोपयोगी पत्रिका प्रकाशित करना। 5. चिकित्सा व शिक्षा के क्षेत्र में प्राप्त सहयोग को वितरित करना।

कार्य पद्धति - 1. सबसे सहयोग-सबको सहयोग की भावना से साधर्मियों से प्राप्त सहयोग साहित्य/चिकित्सा/शिक्षा पर आवश्यकतानुसार वितरित करना। हमारा प्रयास होगा कि फण्ड बनाने की अपेक्षा प्रतिवर्ष प्राप्त सहयोग को उसी वर्ष वितरित कर दिया जाये। 2. व्यक्ति या संस्था के नाम के लिए नहीं, पर काम के लिए काम। 3. सर्वोपयोगी (अपनी समझ के अनुसार) योजना को सबके समक्ष रखना, यदि सहयोग प्राप्त हुआ हो तो उस योजना/कार्य को करना, नहीं तो..... ? 3. अच्छी बातें-सच्ची बातें (अर्थात् शाश्वत सत्य) ज्यादातर लोगों तक पहुँचे, ऐसा प्रयास करना।

गतिविधि - 1. साहित्य प्रकाशन, 2. **संस्कार सुधा** मासिक पत्रिका का प्रकाशन, 3. **सुखायतन - सुखार्थी साधर्मियों के लिए निःशुल्क/सशुल्क आवास-भोजन की व्यवस्था के साथ आध्यात्मिक पर्यावरण प्रदान करना,** 4. साधर्मी वात्सल्य योजना - साधर्मियों से स्वैच्छिक सहयोग लेकर योग्य साधर्मियों को शिक्षा/चिकित्सा सहयोग पहुँचाना।

निवेदक : **समर्पण चेरीटेबल ट्रस्ट, उदयपुर (राज.)**

विषय-परिचय

प्रस्तुत कृति का नाम 'जैनपर्व चर्चा' रखा है। इसमें मुख्यता से तो जैनपर्वों का परिचय दिया गया है, किन्तु गौणरूप से देश में मनाए जाने वाले कुछ अन्य पर्वों का भी समावेश किया गया है। इसकारण इसके तीन खण्ड किए जा सकते हैं - 1. जैनपर्व, 2. राष्ट्रीय पर्व तथा 3. सामाजिक पर्व। अब इन्हीं का सामान्य अवलोकन करते हैं -

1. जैनपर्व - इसमें कुल 20 जैनपर्वों की चर्चा की गई है। इस कृति को पढ़ने से सर्वप्रथम तो यह लाभ होगा कि हमें जैनपर्वों के नामों की सूची प्राप्त होगी; दूसरा हम उनकी वास्तविक तिथि जानेंगे; उन पर्व विशेष का परिचय; उनसे संबंधित घटित हुई घटना; उनको मनाने की आगमानुकूल विधि तथा उनको मनाने से होने वाले लाभ भी ज्ञात होंगे।

इनमें कुछ पर्व तो त्रैकालिक हैं; जैसे - अष्टमी, चतुर्दशी, दशलक्षण, अष्टाह्निका, सोलहकारण आदि तथा कुछ पर्व तात्कालिक-घटनाप्रधान हैं; जैसे - दीपावली, रक्षाबंधन, अक्षय तृतीया, श्रुतपंचमी आदि।

वास्तव में ये सभी जैनपर्व पूर्णत: अहिंसात्मक, जीवमात्र के कल्याण में निमित्तभूत तथा साम्प्रदायिकता की गंध से परे हैं।

2. राष्ट्रीय पर्व - इसमें मात्र दो पर्वों का परिचय दिया गया है - 1. स्वतंत्रता दिवस तथा 2. गणतंत्र दिवस। इनकी चर्चा करते हुए पहले तो इन पर्वों में घटित होने वाली घटनाओं से परिचय कराया गया है; पश्चात् उनका आध्यात्मीकरण करके उन्हें तात्त्विक बनाने का प्रयास किया गया है। उनको पढ़कर ऐसा लगेगा, जैसे हम स्वाध्याय ही कर रहे हैं।

3. सामाजिक पर्व - इसमें 4 पर्वों को जगह दी गई है - 1. नया वर्ष, 2. मकर संक्रान्ति, 3. दशहरा तथा 4. होली। इनको बताने का उद्देश्य यह रहा है कि हम जानें तो सही कि ये पर्व क्या हैं, किनके हैं; इनको मनाने का औचित्य क्या है? तथा इनको मनाने से हमारा किसी भी रूप में कोई हित होता है क्या? कहीं ऐसा तो नहीं कि हम बिना-विचारे ही इनको महत्त्व देकर किसी तरह का अंधानुकरण कर रहे हैं? सच में जो निष्पक्ष भाव से इन्हें देखेगा, वह चाहे जैन हो या अजैन; एक बार तो अवश्य विचार करेगा।

वास्तव में पर्व तो वे होते हैं; जो सर्व हितकारी हों। जिनके मनाने से व्यक्तिगत, सामाजिक तथा राष्ट्रीय - किसी भी प्रकार का हित न हो, वे पर्व नहीं; किन्तु पर्वाभास हैं। ○○○

विषयानुक्रमणिका

क्र.	विषय	पृष्ठ
1.	प्रमुख जैनपर्व तिथियाँ	9
2.	आधुनिक कैलेण्डर के अनुसार **'आगामी पर्व तिथियाँ'**	11
3.	मंगलाचरण	13
4.	**'पर्व'** शब्द की सार्थकता व प्रयोजन	15
5.	पर्वों का महत्त्व	18
6.	आत्मोन्नति के प्रतीक **'अष्टमी'** व **'चतुर्दशी'** पर्व	21
7.	पर्वों का मेला : श्रावण-भादों में (मोक्षसप्तमी, रक्षाबंधन, सोलहकारणव्रत, दशलक्षण महापर्व, पुष्पांजली व्रत, सुगंध-दशमी, रत्नत्रयव्रत, अनंत चतुर्दशी, क्षमावाणी)	23
8.	सही मायने में **'रक्षाबंधन'**	30
9.	जानें रहस्य **'दशलक्षण'** का	34
10.	जैनियों की **'दीपावली'** कैसी हो ?	39
11.	दानतीर्थ प्रवर्तन का प्रतीक **'अक्षय तृतीया'** पर्व	46
12.	श्रुतावतार की ज्ञापक **'श्रुतपंचमी'**	53
13.	तीर्थोत्पत्ति दिवस ही **'वीरशासन जयन्ती'**	60
14.	नंदीश्वरद्वीप में **'अष्टाह्निका पर्व'**	68
15.	**पंचकल्याणक :** एक अपूर्व अवसर	71
16.	**भगवान ऋषभदेव** का निर्वाणोत्सव क्यों महत्त्वपूर्ण ?	74
17.	एक पुकार भगवान महावीर के द्वार! **(महावीर जयन्ती)**	76
18.	धन्य जन्मजयन्ती **'कुन्दकुन्दाचार्य'** की	81
19.	नये वर्ष में नया क्या ?	83
20.	क्या है ये **'मकर संक्रान्ति ?'**	88
21.	जैन संविधान : अनादि-अनंत **(गणतंत्र दिवस)**	94
22.	'स्वतंत्रता' हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है **(स्वतंत्रता दिवस)**	99
23.	रावण का अपराध कितना ? **(दशहरा)**	106
24.	**'होली'** की वास्तविकता	117

प्रमुख जैनपर्व तिथियाँ

तात्कालिक पर्व नाम	पर्व मनाने का कारण	तिथियाँ
1. मोक्षसप्तमी	23वें तीर्थंकर श्री पार्श्वनाथ भगवान का निर्वाण दिन	श्रावण शुक्ला सप्तमी
2. रक्षाबंधन	अकंपनाचार्य आदि 700 मुनियों की रक्षा का दिन	श्रावण शुक्ला पूर्णिमा
3. दीपावली	श्री महावीर निर्वाण/मोक्ष कल्याणक दिवस	कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी
4. अक्षय तृतीया	मुनि ऋषभदेव को प्रथम इक्षु रस का आहार	वैशाख शुक्ला तृतीया
5. श्रुतपंचमी	प्रथम श्रुतस्कंध षट्खण्डागम निर्माण दिवस	ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी
6. वीरशासन जयंती	श्री महावीर स्वामी की प्रथम दिव्यध्वनि खिरी	श्रावण कृष्णा प्रतिपदा (एकम)
7. श्री ऋषभदेव निर्वाण	प्रथम तीर्थंकर श्री आदिनाथ भगवान का मोक्ष	माघ कृष्णा चतुर्दशी
8. महावीर जयन्ती	24वें तीर्थंकर श्री महावीर स्वामी का जन्मकल्याणक	चैत्र शुक्ला त्रयोदशी
9. अनंत चतुर्दशी	12वें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य भगवान का निर्वाण	भाद्र शुक्ला चर्तुदशी
10. श्री कुन्दकुन्द जयन्ती	पंच परमागम आदि के कर्ता	श्रावण शुक्ला पंचमी

शाश्वत पर्व नाम	पर्व मनाने का कारण	तिथियाँ
1. अष्टमी व चतुर्दशी	आत्मोन्नति मार्गदर्शक	प्रत्येक माह में दो-दो बार
2. अष्टाह्निका महापर्व	देवों द्वारा नंदीश्वर द्वीप में महापूजन तथा मनुष्यों द्वारा ढाई द्वीप में पूजन	वर्ष में तीन बार (8-8 दिन) कार्तिक शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा, फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा, आषाढ़ शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा

3. सोलहकारण व्रत	तीर्थंकर प्रकृति बंध योग्य भावनाएँ तथा व्रतों का पालन	वर्ष में तीन बार - भाद्र कृष्णा प्रतिपदा से आश्विन कृष्णा प्रतिपदा तक (31 दिन), माघ कृष्णा प्रतिपदा से फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा तक (31 दिन), चैत्र कृष्णा प्रतिपदा से वैशाख कृष्णा प्रतिपदा तक (31 दिन)
4. दशलक्षण महापर्व	आत्मा के उत्तमक्षमादि स्व-भावों के निर्णय हेतु	वर्ष में तीन बार (10-10 दिन) - चैत्र शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी, भाद्र शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी, माघ शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी
5. पुष्पांजली व्रत	पंचमेरु स्थापना कर पूजन	तीनों दशलक्षणों में पंचमी से नवमी तक (5 दिन)
6. रत्नत्रय व्रत	रत्नत्रय आराधना व व्रत	तीनों दशलक्षणों में त्रयोदशी से पूर्णिमा तक (3 दिन)
7. क्षमावाणी	सर्व प्राणी व स्वयं के प्रति क्षमाभाव की ज्ञापक	तीनों दशलक्षणों के एक दिन बाद - वैशाख कृष्णा प्रतिपदा, आश्विन कृष्णा प्रतिपदा, फाल्गुन कृष्णा प्रतिपदा।

विशेष ध्यातव्य -

1. प्रतिपदा को एकम तथा पूर्णिमा को पूनम भी कहते हैं।
2. शुक्ला को संक्षेप में सुदी तथा तृतीया को तीज भी कहा जाता है।
3. वासुपूज्य भगवान का निर्वाण दिवस उत्तरपुराण के अनुसार भाद्र शुक्ला चतुर्दशी है; किन्तु तिलोयपण्णत्ती के अनुसार फाल्गुन कृष्णा पंचमी है। उत्तरपुराण प्रथमानुयोग का ग्रन्थ होने से ज्यादा प्रचलित हुआ और उसमें लिखित तिथि प्रसिद्ध हो गई।
4. सोलहकारण व्रत, तिथियों के अनुसार तो 31-31 दिन के होते हैं; किन्तु भावनाएँ 16 होने से प्रत्येक को दो-दो दिन मनाने के कारण 32-32 दिन चलने लगे हैं।
5. दशलक्षण पर्व 10 दिन के हैं; किन्तु कभी तिथि के बढ़ जाने से 11 दिन के भी हो जाते हैं। कदाचित् किसी तिथि का क्षय हो जाए तो एक दिन पूर्व से मनाना चाहिए; किन्तु समापन तिथि चतुर्दशी ही रहेगी।

आधुनिक कैलेण्डर के अनुसार 'आगामी पर्व तिथियाँ'

पर्व का नाम	तिथि	2020	2021	2022
1. मोक्षसप्तमी	श्रावण शुक्ला सप्तमी	26.7.20	15.8.21	4.8.22
2. रक्षाबंधन	श्रावण शुक्ला पूर्णिमा	3.8.20	22.8.21	12.8.22
3. दीपावली	कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी	15.11.20	4.11.21	25.10.22
4. अक्षय तृतीया	वैशाख शुक्ला तृतीया	26.4.20	14.5.21	3.5.22
5. श्रुतपंचमी	ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी	27.5.20	15.6.21	4.6.2022
6. वीरशासन जयंती	श्रावण कृष्णा प्रतिपदा	6.7.20	24.7.21	14.7.22
7. श्री ऋषभदेव निर्वाण	माघ कृष्णा चतुर्दशी	23.1.20	10.2.21	31.1.2022
8. महावीर जयन्ती	चैत्र शुक्ला त्रयोदशी	6.4.20	25.4.21	14.4.22
9. श्री कुन्दकुन्द जयन्ती	श्रावण शुक्ला पंचमी	25.7.20	13.8.21	2.8.22
10. अष्टाह्निका	कार्तिक शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा	22.11.20 -30.11.20	11.11.21-19.11.21	1.11.22-8.11.22
11. अष्टाह्निका	फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा	2.3.20-9.3.20	22.3.21-28.3.21	10.3.22-18.3.22
12. अष्टाह्निका	आषाढ़ शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा	28.6.20-5.7.20	16.7.21-23.7.21	6.7.22 -13.7.22

13. सोलहकारण व्रत	चैत्र कृष्णा एकम-वैशाख कृष्णा एकम		29.3.21-27.4.21	19.3.22-17.4.22
14. सोलहकारण व्रत	भाद्र कृष्णा एकम-आश्विन कृष्णा एकम	4.8.20-3.9.20	23.8.21-21.9.21	13.8.22-11.9.22
15. सोलहकारण व्रत	माघ कृष्णा एकम-फाल्गुन कृष्णा एकम		29.1.21-28.2.21	18.1.22-17.2.22
16. दशलक्षण पर्व	चैत्र शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी		17.4.21-21.4.21	6.4.22-15.4.22
17. दशलक्षण पर्व	भाद्रपद शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी	23.8.20-1.9.20	10.9.21-19.9.21	31.8.22-9.9.22
18. दशलक्षण पर्व	माघ शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी		16.2.21-26.2.21	5.2.22-15.2.22
19. क्षमावाणी	वैशाख कृष्णा एकम		27.4.21	17.4.22
20. क्षमावाणी	आश्विन कृष्णा एकम	3.9.20	21.9.21	11.9.22
21. क्षमावाणी	फाल्गुन कृष्णा एकम		28.2.21	17.2.22

कुछ पर्वों की आधुनिक तिथियाँ

क्र.	धार्मिक पर्व	दिनांक
1.	महावीर स्वामी का जन्म	सोमवार, 27 मार्च, 598 ई.पू.
2.	वीर शासन जयंती	रविवार, 18 जुलाई, 557 ई.पू.
3.	महावीर निर्वाण	मंगलवार, 15 अक्टूबर, 527 ई.पू.
	लौकिक पर्व	**दिनांक**
4.	स्वतंत्रता दिवस	15 अगस्त, 1947
5.	गणतंत्र दिवस	26 जनवरी, 1950
6.	नया वर्ष	1 जनवरी
7.	मकर संक्रान्ति	14 जनवरी

मंगलाचरण

पंच प्रभु को नमन कर, करूँ '**पर्व**' आख्यान।
जोड़े जो निज भाव से, सार्थक होवे नाम।। 1।।।

मोक्षसप्तमी पार्श्वप्रभु निर्वाण है,
श्रावण शुक्ला सप्तम तिथि महान है।
रक्षाबंधन मुनिरक्षा का पर्व है,
श्रावण शुक्ला पूनम का वह धर्म है।। 2।।

महावीर निर्वाण तिथि तुम जान लो,
कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी ही मान लो।
अक्षय तृतीया ऋषभ मुनि आहार दिन,
तीज विशाखी सुदी मनाना ठान लो।। 3।।

श्रुतपंचमी दिन श्रुत के अवतार का,
जेठ शुक्ल पंचमी जिनागम सार का।
शासनवीर जयंती दिव्यध्वनि दिवस,
श्रावण शुक्ला एकम जग उपकार का।। 4।।

माघ कृष्ण चौदस की तिथि भी दिव्य है,
ऋषभदेव का मोक्ष दिवस ज्ञातव्य है।
चैत्र शुक्ल तेरस दिन **वीर जयन्ती** का,
इसे मनाते मुक्ति पिपासु भव्य हैं।। 5।।

अनंत चतुर्दशी वासुपूज्य निर्वाण है,
भाद्र सुदी चौदस की तिथि प्रधान है।
आम्नाय चलती जिनकी वे **कुन्दकुन्द**
श्रावण सुदी पंचमी जन्म महान है।। 6।।

उपर्युक्त ये **तात्कालिक** सब पर्व हैं,
घटना से संबद्ध, निजी उत्कर्ष हैं।
अब जानें **शाश्वत** पर्वों के भाव को,
प्राप्त करें त्रैकालिक शुद्ध स्वभाव को।। 7।।

एक माह में दो-दो अष्टमी चतुर्दशी,
आत्मोत्कर्ष की कर्ता हैं दोनों तिथि।
रहित अष्ट कर्मों की ज्ञापक **अष्टमी,**
गुणस्थान चौदह से पार **चतुर्दशी**।। 8।।

कार्तिक फाल्गुन अर अषाढ़ के माह में,
सुदी अष्टमी से पूनौ की छाँव में।
देव करें पूजा नन्दीश्वर द्वीप में,
अष्ट अह्निका मनुज मना नरद्वीप में।। 9।।

भाद्र माघ व चैत्र की कृष्णा एक से,
आश्विन फाल्गुन अर वैशाख की एक तक।
सोलहकारण एक वर्ष में तीन बार,
तीर्थंकर प्रकृति बंधन के योग्य विचार।। 10।।

पर्वों में **दशलक्षण** पर्व प्रधान है,
भाद्र माघ व चैत्र माह की शान है।
सुदी पंचमी से चौदस तक आत हैं,
आत्माराधन हेतु ये विख्यात हैं।। 11।।

इसी बीच में पंचमेरु की थापना,
पुष्प अंजली व्रत को मानो आपना।।
सुदी पंचमी से नवमी तक मानिए,
पूजन करके अपना ही हित जानिए।। 12।।

रत्नत्रय में तीन रतन आराधना,
त्रयोदशी से पूनम तक हित साधना।
क्षमावाणी में स्व-पर क्षमा विख्यात है,
दशलक्षण के एक दिवस पश्चात् है।। 13।।

उपर्युक्त व अन्य अनेकों पर्व हैं,
वीतरागता के पोषक ही सर्व हैं।
सत्स्वरूप इनका जाने तो धर्म है,
निज से जुड़ जाए पावे शिव शर्म है।। 14।।

इसप्रकार इन पर्वों को, सही रूप में जान।
सत्तथ्यों को ग्रहण कर, करूँ निजी पहचान।। 15।।

'पर्व' शब्द की सार्थकता व प्रयोजन

हमारा भारतदेश पर्व प्रधान है। एक वर्ष में जितने दिन होते हैं, उससे कई गुने ज्यादा तो पर्व आते हैं, जिन्हें लोग बहुत ही उल्लास के साथ मनाते हैं। इसे 'उत्सव' या 'त्यौहार' की संज्ञा भी दी जाती है।

यदि 'पर्व' शब्द का वास्तविक अर्थ देखा जाए तो 'जोड़' अथवा 'संधि' होता है। इसका आध्यात्मिक अर्थ होता है **'अपने आत्मा से जोड़ना' अर्थात् आत्मा का जो उपयोग सांसारिक बाह्य विषयों में भटक रहा है, उसे वहाँ से खींचकर अपने आत्मा में ही जोड़ देना, 'पर्व' कहलाता है।**

'पर्व' की व्याख्या यदि अन्य शब्दों में की जाए तो जो प्रत्येक व्यक्ति को धार्मिक संस्कारों से, नैतिक व सदाचारमय जीवन से; अपनी सभ्य संस्कृति से तथा अपने देश, समाज, परिवार व मित्रों के प्रति कर्तव्य व दायित्वों से जोड़ दे, **वही सच्चे अर्थों में पर्व संज्ञा प्राप्त करता है।**

वर्तमान आधुनिक युग में जन्म लेने वाले शायद उपर्युक्त 'पर्व' संज्ञा व उसकी परिभाषा भूल रहे हैं, आध्यात्मिक पर्व तो बहुत दूर; किन्तु लौकिक दृष्टि से भी पर्वों का वास्तविक प्रयोजन न जानकर देश की संस्कृति व सभ्यता को बुजुर्गों की पुरानी सभ्यता कहकर हँसी उड़ाते हैं; देश का पैसा बर्बाद करते हैं; पर्वों के नाम पर खूब केमिकलयुक्त रंग उड़ाते हैं; पटाखे चलाते हैं, लकड़ियाँ जलाते हैं; नये-नये आधुनिक फैशन के कपड़े पहनते हैं, होटलों में जाकर वहाँ का अमर्यादित व स्वास्थ्य नाशक खान-पान करते हैं और समझते हैं कि हमने पर्वों को बड़ी ही धूमधाम से मनाया।

अजैनी तो दूर ही रहो, कई जैनी भाई भी ऐसे मिल जायेंगे, जिन्हें शायद यह भी पता न हो कि अमुक पर्व क्यों मनाया जाता है ? रक्षाबंधन पर कौन-सी घटना घटी थी ? दीपावली पर क्या हुआ था ? अक्षय तृतीया

क्यों मनायी जाती है ? अष्टमी-चतुर्दशी, अष्टाह्निका व दशलक्षण आदि पर्वों को मनाने के पीछे क्या रहस्य छिपा हुआ है ? यह कुछ भी सोचने का समय नहीं व सोच भी नहीं।

वार्षिक कैलेण्डर में कितने पर्व आते हैं, उनकी जानकारी अथवा सभी की नहीं तो कुछ मुख्य पर्वों का स्वरूप और उनका क्या महत्त्व है, इसका विवेक तो हरेक को होना ही चाहिए। जैसे अगस्त माह में रक्षाबंधन, सोलहकारण व्रतों का शुभारंभ, सितम्बर माह में दशलक्षणव्रत, पुष्पांजलीव्रत, सुगंधदशमी, रत्नत्रयव्रत, अनंत चतुर्दशी आदि; इसीतरह अक्टूबर या नवम्बर माह में दीपावली; इनके अलावा अक्षय तृतीया, श्रुतपंचमी, वीरशासन जयंती, महावीर जयंती आदि पर्व मुख्य हैं।

उपर्युक्त पर्वों के अतिरिक्त और भी अनेक पर्व आते हैं, उन सभी का महत्त्व कहें या उन पर्वों संबंधी सम्पूर्ण घटनाओं की जानकारी तथा उन पर्वों को मनाने का मूल प्रयोजन क्या है ? यह सब जानना हमारा कर्तव्य है।

जिसप्रकार हम अपने लौकिक जीवन में आनेवाले किसी के जन्मदिन, शादी की वर्षगाँठ, गृह प्रवेश दिवस, शहर प्रवेश दिवस, नौकरी अथवा व्यापार शुभारंभ दिवस तथा मृत्यु दिवस आदि मनाते हैं तो उस दिन की घटना की जानकारी भी रखते हैं कि आज किसी का जन्मदिन है या मृत्यु का दिन ?

उसी तरह हमारा कर्तव्य है कि हम जिस धार्मिक पर्व को मना रहे हैं, उसकी जानकारी बृहद् स्तर पर नहीं तो कम से कम सामान्य स्तर पर तो होनी ही चाहिए। जानकारी के साथ उनको मनाने का मूल प्रयोजन भी हमें ज्ञात होना चाहिए।

जैन संस्कृति में प्रत्येक पर्व का प्रयोजन जीव मात्र का कल्याण है। प्रत्येक पर्व, गलत अवधारणाओं को तोड़कर सही व उचित मान्यताओं से जोड़ता है। जिसमें स्वयं का, परिवार का, समाज का व देश का अहित हो, वहाँ से हटाकर सभी को हितकारी मार्ग से जोड़ता है।

जैनधर्म का प्रत्येक पर्व नीले-पीले रंग तो बहुत दूर, वह तो रंग-राग से नाता तोड़ता है, पटाखे फोड़ना तो बहुत दूर, उनसे अत्यधिक हिंसा होती है; अतः उनके बनाने के भावों से भी नाता तोड़ता है, लकड़ियाँ जलाना, पानी बर्बाद करना तो बहुत दूर, वह तो अंदर उत्पन्न होनेवाली रागरूपी आग से नाता तोड़कर अपने शीतल व शांत स्वभाव से नाता जोड़ता है।

इसीतरह अनावश्यक खाना-पीना बनाना तो बहुत दूर, उनके आरंभरूप परिणाम को हेय कहता है; व्यर्थ के महँगे व आलीशान कपड़े व शृंगार करनेवाले वस्त्रादि पहनना तो दूर, उनके प्रति होने वाली इष्ट बुद्धि को छोड़, दिशाओं को ही अम्बर बनाने की व संवररूपी आभूषण से स्वयं को शृंगारित करके अपने अनादिनिधन स्वभाव से नाता जोड़ने की शिक्षा देता है।

जैनपर्व तो ऐसे हैं, जो किसी को मारकर 'बुराई पर अच्छाई की जीत' के नारे न लगाकर, उन मारनेवाले हिंसक भावों से बहुत दूर, अपने क्षमा आदि भावों से जोड़ते हैं।

जैनपर्व भक्त बनाने के नहीं,भगवान बनाने के हैं; किसी को पामर बताने के नहीं; किन्तु प्रत्येक प्राणी को परमात्मा बताने के हैं। वे पर्व मात्र बहिन द्वारा भाई को राखी बाँधकर बहिन की रक्षा के भावों वाले नहीं; किन्तु व्यवहार से प्राणी मात्र की रक्षा तथा वास्तव में तो रक्षा के भावरूप बंध-भावों से सुरक्षा करनेवाले होते हैं।

इसप्रकार जैनपर्व सभी के हिए हितकारी; देश, समाज, संस्कृति, प्रकृति, पर्यावरण और विविध तरह के मानसिक प्रदूषणरूप कुमार्ग से हटाकर सन्मार्ग से जोड़नेवाले होते हैं; इसलिए इन्हें सच्चे अर्थों में 'पर्व' संज्ञा दी गई है।

अतः सभी का कर्तव्य है कि हम 'पर्व' शब्द की सार्थकता व प्रयोजन विचारकर ही समस्त पर्वों को मनाएँ - ऐसी भावना के साथ विराम।

पर्वों का महत्त्व

पर्व शब्द के सामान्यतः अनेक अर्थ हैं, जैसे पूरा करना, पवित्र तथा प्रसन्न होना आदि। यदि इनको मिलाकर पूरा अर्थ करें तो पर्व शब्द की व्याख्या होगी कि 'जो कार्य करते-करते पूर्णता को प्राप्त होकर पवित्र हृदय में प्रसन्नता का अनुभव कराये, वह पर्व है।'

वैसे यह पर्व शब्द 'पृ' धातु में 'वनिप्' प्रत्यय लगाकर निष्पन्न होता है; जिसका अर्थ है जोड़ना ग्रंथि या गाँठ। यह अर्थ भी पूर्व के अर्थ को ही पुष्ट करता है अर्थात् वाँछित कार्य की पूर्णता से उत्पन्न पवित्र आनंद के अनुभव से जो स्वयं को जोड़ दे, उसे सही अर्थ में पर्व संज्ञा दी जा सकती है।

इसतरह उपर्युक्त अर्थ को सार्थक करने वाले अनेकों पर्व वार्षिक कैलेण्डर में आते हैं, जिनमें कुछ तो लौकिक पर्व होते हैं; जो समाज, प्रान्त व राष्ट्र के उत्कर्ष से सरावोर होते हैं, जिन्हें हम राष्ट्रीय पर्व भी कहते हैं; जैसे स्वतंत्रता दिवस, गणतंत्र दिवस आदि तथा अनेक पर्व ऐसे होते हैं, जो धर्म की ओर सभी के चित्त को आकर्षित करते हैं अथवा यूँ कहें कि जो धर्म से जोड़ते हैं, वे धार्मिक पर्व कहलाते हैं।

ये धार्मिक पर्व भी दो प्रकार के हैं - एक तो त्रैकालिक/शाश्वत हैं, जैसे दशलक्षण, अष्टाह्निका, षोडश कारण, अष्टमी, चतुर्दशी आदि। ये पर्व अनादिकाल से मनाए जाते रहे हैं और इसी तरह आगे भविष्य में भी अनंत काल तक मनाए जाते रहेंगे। यद्यपि ये अनादि-अनंत अकारण हैं; तथापि उनमें भी कुछ कारणपना परिलक्षित होता है, जो आगम के आलोक में अवलोकनीय है।

दूसरे तरह के पर्व तात्कालिक होते हैं, जिन्हें हम क्षणिक अथवा सादि-सांत भी कह सकते हैं। तात्पर्य यह है कि वे किसी काल विशेष में अथवा क्षेत्र विशेष में मनाए जाते हैं; फिर काल परिवर्तन के साथ वे सभी काल के गाल में विलीन हो जाते हैं। ये तात्कालिक पर्व भी दो

प्रकार के कहे-कहे जाते हैं - एक तो घटनात्मक हैं अर्थात् किसी धार्मिक घटना विशेष पर आधारित होते हैं; जैसे अक्षय तृतीया, श्रुत पंचमी, रक्षाबंधन आदि तथा दूसरे वैयक्तिक अर्थात् किसी व्यक्तिगत चरमोत्कर्ष से संबंधित होते हैं, जैसे महावीर-जयंती, वीर निर्वाणोत्सव, ऋषभदेव जयंती आदि।

उपर्युक्त ये सभी धार्मिक पर्व हमें कल्याण के मार्ग से; आत्मोन्नति के मार्ग से तथा संसार दु:खों से हटाकर सच्चे सुख के मार्ग से जोड़ते होने से सच्चे अर्थों में पर्व नाम को सार्थक करते हैं।

इसी प्रसंग में एक बात और सभी को जानने योग्य है कि जब-जब भी पर्वों की चर्चा चलती है, तब-तब वहाँ व्रतों का पालन अवश्य दिखाई देता है। जैसे दशलक्षण पर्व, दशलक्षण व्रत, षोडशकारण पर्व, षोडशकारण व्रत, रत्नत्रय पर्व, रत्नत्रय व्रत आदि। इससे यह संदेह उत्पन्न होता है कि ये पर्व व व्रत एक ही हैं या इनमें कोई अंतर है ? अब इसी का विचार करते हैं।

पर्व और व्रत - 1. सामान्यत: उत्तम भावना से जोड़ते होने से पर्व प्रवृत्तिरूप हैं तथा व्रत त्यागरूप होने से निवृत्तिस्वरूप हैं।

2. 'पर्व' सामूहिकरूप से मनाया जाने वाला उत्सव व त्यौहार है तथा 'व्रत' अकेले ही भोगे जानेवाला निज आनंद का संचार है।

3. पर्व कदाचित् दूसरे के उत्कर्ष को तवज्जो देता है तो व्रत निजोन्नति की कहानी लिखता है।

4. पर्व मनाने के लिए कदाचित् भीड़ चाहिए, किन्तु व्रतों के अंगीकार हेतु एकत्वरूप एकांत का सौंदर्य दर्शनीय है।

6. व्रत एक तरह से यम-नियमरूप संकल्प है तो पर्व उसका प्रशंसक व अनुमोदक है।

7. व्रत एक तरह का प्रभाव (उत्कृष्ट भाव) है तो पर्व है प्रभावना।

8. 'व्रत' निज में आनंद का संचार है तो पर्व इस संचार का प्रचार है।

9. पर्व एक तरह से व्यापक है तो व्रत व्याप्य है।

10. पर्व में पुण्य बंध की मुख्यता है तो व्रत में कर्म अभाव की मुख्यता है।

उपर्युक्त दोनों में इतनी असमानताएँ दिखाई देने पर भी, उनमें समानताओं की कमी भी नहीं है, वही देखते हैं।

1. पर्व व व्रत दोनों ही प्रवृत्ति-निवृत्तिस्वरूप हैं। जहाँ पर्व विषय-कषाय के वातावरणरूप अशुभ से निवृत्तिरूप हैं तो वहीं धार्मिक महोत्सवों की अनुमोदना वाले होने से मंदकषायरूप शुभ में प्रवृत्तिरूप हैं। इसीतरह व्रत भी पाँच पापों के त्यागभाव वाले होने से निवृत्तिरूप तथा निजात्म-स्वरूप में प्रवर्तनरूप होने से प्रवृत्तिरूप हैं।

2. यदि परम आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करें तो पर्व भी निज आत्म स्वभाव से जोड़ते हैं तथा व्रत भी अपने निज भाव की ओर ले जाने वाले होने से दोनों एक ही लक्ष्यस्वरूप हैं।

उपर्युक्त इन्हीं सब कारणों से पर्व व व्रत की एक साथ संगति नजर आती है। प्रथमानुयोग के कथानकों में धार्मिक पर्वों के साथ व्रतों की चर्चा बहुतायत मिलती है। इससे एक बात और स्पष्ट होती है कि हमारे सभी धार्मिक पर्व वास्तव में पाप, विषय-कषाय व रागादि के त्यागरूप हैं; किन्तु विषय-पोषण के नहीं।

यदि हम थोड़ा और इस विषय पर गंभीरता से विचार करें तो पर्वों का महत्त्व स्वत: स्पष्ट हो जाता है। उसके लिए निम्न बिन्दु दर्शनीय हैं-

1. हमारे सभी धार्मिक पर्व ह्रास के नहीं, आत्म विकास के प्रतीक हैं। 2. प्रत्येक पर्व नैतिकता से परिपूर्ण हैं। 3. पर्वों में स्व और पर के कल्याण की भावना निहित है। 4. सभी पर्वों में अहिंसा की प्रधानता है। 5. प्रत्येक पर्व राष्ट्रीय भावना से अविरुद्ध तथा सभ्य संस्कृति के प्रेरक हैं।

इस तरह पर्वों का सही अर्थों में महत्त्व जानकर सच्चे अर्थों में, उन्हें मनाकर अपने कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना चाहिए।

आत्मोन्नति के प्रतीक 'अष्टमी' व 'चतुर्दशी' पर्व

पूर्व के लेख में पर्वों का महत्त्व स्पष्ट हो जाने पर उन पर्वों के विषय में विशेष जानकारी हो – ऐसी जिज्ञासा सहज ही उत्पन्न होती है। तदर्थ इस कृति में प्रसिद्ध कुछ पर्वों पर लिखे गये लेखों से उनकी विशिष्ट जानकारी होगी ही; अभी यहाँ मात्र दो शाश्वत पर्वों की संक्षेप में चर्चा करते हैं।

चूँकि इस विषय से संबंधित आगम में विशिष्ट विस्तार से ज्यादा कुछ लिखा हुआ नहीं मिलता, किन्तु जहाँ व जितना किन्हीं प्रसंगों में प्राप्त हुआ, उसके आधार से ब्र. कल्पनाबेनजी सागर ने वीतराग-विज्ञान विवेचिका में जो इन पर्वों के विषय में लिखा, उसका सार तथा अन्य बिन्दु यहाँ दिये जा रहे हैं।

अष्टमी – यह शाश्वत पर्व आधुनिक कैलेण्डर के अनुसार एक माह में दो बार आता है। इन दिनों विशुद्ध भावों की प्रधानता रहती है। इसे मनाने के कुछ निम्न कारण हैं –

1. सिद्ध भगवान के सम्यक्त्व आदि आठ गुण प्रसिद्ध हैं, उनकी स्मृतिरूप में अष्टमी पर्व मनाया जाता है।

2. सिद्ध दशा अष्टकर्म रहित दशा है, उन कर्मों को नष्ट करने के प्रतीक रूप में यह पर्व प्रसिद्ध है।

3. श्रावक के आठ मूलगुण होते हैं। उनका पालन करना प्रत्येक श्रावक का कर्तव्य है; उन्हीं के निरतिचार पालन के लिए अष्टमी तिथि प्रसिद्ध है।

4. दु:खमय चारित्र मोहनीय के अभाव व मोक्षप्राप्ति का विशिष्ट पुरुषार्थ श्रेणी आरोहण के समय से अर्थात् 8वें गुणस्थान से होता है, उसके प्रतीकरूप में अष्टमी तिथि को याद किया जाता है।

5. आत्मसाधना के लिए विशिष्ट क्षायोपशमिक ज्ञान की आवश्यकता

नहीं; किन्तु जघन्यतम 'अष्ट प्रवचन मातृका' (पाँच समिति व तीन गुप्ति) का ज्ञान पर्याप्त है; अतः क्षायोपशमिक ज्ञान का आकर्षण उचित नहीं – इस ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए अष्टमी तिथि प्रसिद्ध है।

6. अत्यंत दुःखमय 7 नरक पृथ्वियों से पार अष्टम वसुधा पर सर्व दुःख विमुक्त सिद्धदशा की ज्ञापक अष्टमी तिथि है।

चतुर्दशी – यह शाश्वत पर्व भी एक माह में दो बार आता है। इसे मनाने के निम्न कारण हैं –

1. सिद्धदशा चतुर्दश गुणस्थानों से अतीत है, अतः उन 14 गुणस्थानों से पार होने के लिए चतुर्दशी पर्व स्मृतिस्वरूप है।

2. 14 जीव समास व 14 मार्गणास्थानरूप भेदों से पार एक अभेद आत्मतत्त्व के निर्णय की प्रेरक है, चतुर्दशी।

3. 4 गति व 84 लाख योनियों में भ्रमण का मुख्य कारण है मिथ्यात्व आदि 14 प्रकार का अंतरंग परिग्रह, इसके त्याग की स्मृतिरूप चतुर्दशी पर्व प्रसिद्ध है।

4. यह सम्पूर्ण लोक 14 राजू प्रमाण ऊँचा है, उसमें परिभ्रमण के अभाव की मार्गदर्शक है, चतुर्दशी तिथि।

इसप्रकार ये अष्टमी व चतुर्दशी पर्व त्रैकालिक हैं, यद्यपि इनका किसी घटना विशेष से संबंध नजर नहीं आता; किन्तु ये निःसंदेह आत्म विकास की प्रत्येक घटनाओं की प्रतीकस्वरूप हैं। इन दिनों सभी लोग आत्म विशुद्धि की भावना से ओतप्रोत रहकर; परिणामों की पवित्रता में बाह्य सहकारी निमित्तों का आलंबन लेते हैं तथा अंतरंग संयम के साथ बाह्य संयम के पालन हेतु पाँच पाप व विषय-कषाय के त्याग हेतु व्रतों का पालन; बहुत जीवों से युक्त सचित्त व हरी सब्जी आदि के भक्षण का त्याग; तीनों काल सामायिक व प्रोषधोपवास आदि की परंपरा है और यह सब करने योग्य होने से हमारा कर्तव्य भी है। ○○○

पर्वों का मेला : श्रावण-भादों में

शुद्ध भावों के लक्ष्य पूर्वक अशुभ भावों से निवृत्ति हेतु शुभभावरूप व्यवहार धर्म में प्रवर्तन के सर्वाधिक अवसर श्रावण-भादों (तदनुसार अगस्त-सितम्बर माह के बीच) माह में प्राप्त होते हैं।

इन दिनों में इतने अधिक पर्वों को मनाने का अवसर प्राप्त होता है कि जिससे जीव तीव्रकषायरूप अशुभ भाव व अशुभ क्रियाओं से बचकर बुद्धि पूर्वक मंदकषायरूप शुभ भाव तथा उन भावों के अनुरूप शुभ क्रियाओं को करते हुए मिथ्यात्व व कषाय रहित शुद्धभावों की तैयारी करते हैं।

यद्यपि पर्व/त्यौहार तो बहुत हैं, किन्तु मुख्यता से कुछ ही पर्वों की जानकारी संक्षेप में दी जा रही है, जिससे सभी उनको यथायोग्य जानकर सही दिशा में प्रवर्तन करें। उनमें निम्न मुख्य हैं - 1. मोक्ष सप्तमी, 2. रक्षाबंधन, 3. सोलहकारण व्रत, 4. दशलक्षण महापर्व, 5. पुष्पांजली व्रत, 6. सुगंधदशमी, 7. रत्नत्रय व्रत, 8. अनंत चतुर्दशी तथा 9. क्षमावाणी।

1. मोक्ष सप्तमी - श्रावण शुक्ला सप्तमी (ति.प.4/1207) के दिन 23वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का निर्वाण (मोक्ष) कल्याणक मनाया जाता है। श्रावण शुक्ला सप्तमी के दिन भगवान पार्श्वनाथ को मोक्ष की प्राप्ति हुई थी, इसलिए वह तिथि **मोक्ष सप्तमी** नाम से प्रसिद्ध हुई। इस दिन भगवान पार्श्वनाथ को निर्वाण लाडू चढ़ाकर मोक्षप्राप्ति की भावना भानी चाहिए।

2. रक्षाबंधन - यह पर्व जैनधर्म की एक बहुत बड़ी घटना की याद दिलाता है। आज से लाखों वर्षों पूर्व (19वें तीर्थंकर मल्लिनाथ तथा 20वें मुनिसुव्रतनाथ के काल के समकक्ष) श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन अकंपनाचार्य आदि 700 मुनिराजों की विष्णुकुमार मुनिराज द्वारा वटु (वामन/बौने ब्राह्मण) का वेश बनाकर रक्षा हुई थी और उस दिन सभी

लोगों ने वस्तुस्वभाव को ही धर्म कहने वाले जैनधर्म को स्वीकार कर उसकी रक्षा करने का संकल्प लिया था; इसलिए यह पर्व रक्षाबंधन कहलाया।

रक्षाबंधन की संक्षिप्त कथा बिन्दुवार इसप्रकार है –

1. एक बार उज्जैनी नगरी में अकंपनाचार्य आदि 700 मुनिराज पधारे।

2. वहाँ का राजा श्रीवर्मा (श्रीधर्मा) अपने चार मंत्री बलि, नमुचि, बृहस्पति और प्रह्लाद के साथ मुनियों के दर्शनार्थ गए।

3. सभी मुनि मौन थे; अत: उपदेश का लाभ न मिला।

4. राजा अपने मंत्रियों सहित वापस आ रहे थे, वहाँ उन्हें श्रुतसागर मुनि दिखे, उन्हें देखकर जैनधर्म के विद्वेषी चारों मंत्रियों ने विवाद किया, किन्तु वे हार गए।

5. अपमानित चारों मंत्रियों ने इस अपमान का बदला लेने का निश्चय किया।

6. इधर इस घटना का समाचार श्रुतसागर मुनि ने अकंपनाचार्य को सुनाया, जिससे उन्होंने संघ सुरक्षा के हितार्थ श्रुतसागरजी को विवादस्थ स्थल पर ध्यानस्थ रहने को कहा।

7. श्रुतसागर महाराज वहाँ ध्यानस्थ थे, उन्हें देखकर चारों मंत्रियों ने तलवार से उन पर प्रहार किया, किन्तु देवों ने उन्हें कीलित कर दिया।

8. जब यह समाचार राजा को मिला तो उन्होंने मंत्रियों को देश निकाला दे दिया।

9. वे चारों मंत्री भ्रमण करते हुए हस्तिनापुर के राजा पद्म के यहाँ पहुँचे और वहाँ नौकरी करने लगे तथा किसी प्रसंगवश उन्हें प्रसन्न कर, उनसे इच्छित वर लेने का वायदा करवा लिया।

10. एक बार विहार करते हुए अकंपनाचार्य संघ सहित हस्तिनापुर पधारे।

11. ऐसा जानकर उन चारों मंत्रियों ने राजा पद्म से 7 दिन के लिए राज्य माँग कर उन मुनियों पर घोर उपसर्ग किया।

12. क्षुल्लक पुष्पदन्त द्वारा यह समाचार विक्रियाऋद्धि सम्पन्न मुनि विष्णुकुमार को मिला।

13. मुनि विष्णुकुमार एक वटु (ठिगना, बौने ब्राह्मण) का वेश बनाकर वहाँ पहुँचे और बलि से मुनियों के लिए तीन कदम भूमि माँगी।

14. स्वीकृति मिलने पर उन्होंने एक कदम सुमेरु पर, दूसरा मानुषोत्तर पर रखा और तीसरे को जगह न बची - ऐसा देखकर मंत्री घबरा गए और क्षमायाचना की।

15. इसतरह सभी मुनियों का उपसर्ग दूर हुआ। यह दिन श्रावण माह के शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा का दिन था, उसी दिन से यह वात्सल्य पर्व ही रक्षाबंधन नाम से प्रचलित हो गया।

इस दिन सभी को स्वभावत: रक्षित; किन्तु बुद्धिपूर्वक पुरुषार्थ से जिनधर्म की रक्षा का तथा स्वयं की विभाव भावों से रक्षा करने का संकल्प लेना चाहिए।

विशेष - इसी श्रावण मास की पूर्णिमा तिथि के दिन 11वें तीर्थंकर श्रेयांसनाथ भगवान का निर्वाण (मोक्ष) हुआ था। (ति.प. 4/1195)

3. सोलहकारणव्रत - सामान्यतया 31 दिन तक चलने वाला यह पर्व भाद्रकृष्णा प्रतिपदा से प्रारंभ होकर आश्विन कृष्णा प्रतिपदा को समाप्त होता है; किन्तु सुविधानुसार 16 कारण भावनाओं को मनाने के लिए प्रत्येक के लिए दो-दो दिन के हिसाब से 32 दिन कर लिए जाते हैं। इन दिनों दर्शन विशुद्धि आदि सोलहकारण भावनाओं के चिंतन की मुख्यता रहती है। इन भावनाओं का चिंतन तीर्थंकर प्रकृति के आस्रव-बंध में निमित्त होता है।

यद्यपि तीर्थंकर प्रकृति भी एक प्रकार से कर्म का ही भेद है और कर्म

स्वयं संसारस्वरूप है। इसलिए प्रकृति कोई भी हो, उसका आकर्षण नहीं होना चाहिए तथा इसमें एक बात और है कि तीर्थंकर प्रकृति बाँधने के लक्ष्य से किया गया चिंतन, उस प्रकृति के बंधन में कारण भी नहीं होता; किन्तु 'स्व' के लक्ष्य के समय 'पर' अर्थात् विश्व के समस्त जीवों के कल्याण की भावनारूप राग ही उस प्रकृति के बंध में निमित्त बन जाता है।

इसलिए हमारा कर्तव्य है कि सोलहकारण व्रतों के दिनों में भी 'स्व' को ही लक्ष्य में लेने का प्रयास करना चाहिए तथा उस समय 'रागांश' के कारण तीर्थंकर प्रकृति का बंध हो जाए तो हो जाए, वह भी इस अपेक्षा से ठीक है कि उस प्रकृति के बँध जाने पर उस प्रकृति की सत्ता वाले जीव के संसार में तीन भव से अधिक नहीं होते।

विशेष - सोलहकारण व्रत वर्ष में तीन बार आते हैं।

4. दशलक्षण महापर्व - यह पर्व किसी घटना प्रधान न होकर अनादि से चला आ रहा त्रैकालिक-शाश्वत पर्व है। यह पर्व भी वर्ष में तीन बार आता है - चैत्र, भाद्र व माघ माह में पंचमी से चतुर्दशी तक; किन्तु अनेक तरह की सुविधानुसार यह विशेषरूप से भादो सुदी (शुक्ला) पंचमी से चतुर्दशी तक मनाया जाता है।

दश दिनों तक मनाये जाने वाले इस पर्व में धर्म के दशलक्षणों की विशेषता रहती है। यद्यपि ये उत्तमक्षमादि दश भेद सभी एक साथ पाये जाते हैं, तथापि उनको पृथक्-पृथक् करके दश दिनों तक मनाने की परंपरा है।

इस पर्व को मनाने का उद्देश्य है कि मोक्ष जाने के पूर्व जैसे ये मुनिराजों को प्रगट होते हैं, उसी तरह हमें भी अपने स्वभाव के आश्रय से इन्हें प्रगट करने की भावना के साथ तदनुरूप पुरुषार्थ करना श्रेयस्कर है।

5. पुष्पांजली व्रत - इसका अर्थ है हाथ में पुष्पों (पीले चावल) को लेकर श्री जिनेन्द्र भगवान के समक्ष क्षेपण करना अथवा अष्ट द्रव्य से पूजन करना।

यह पर्व दशलक्षण पर्व के प्रारंभिक दिन भाद्र शुक्ला पंचमी से लेकर नवमी तक 5 दिन का होता है। इस दिन देवतागण ढाईद्वीप में स्थित पंचमेरु संबंधी जिनालय में विराजमान जिनबिंबों की साक्षात् पूजन करते हैं। यद्यपि हम वहाँ नहीं पहुँच सकते, इसलिए हमें यहाँ पर ही पंचमेरु की स्थापना करके पूजन करना चाहिए।

6. सुगंध दशमी - यह पर्व दशलक्षण महापर्व के छठवें दिन भाद्र शुक्ला दशमी के दिन आता है।

इस पर्व से संबंधित एक पौराणिक घटना प्रसिद्ध है कि भरतक्षेत्र के काशी देश में वाराणसी नगर के राजा भूपाल की पत्नी श्रीमती नाम की रानी ने ईर्ष्या व कषाय वश मुनिराज को आहार में कड़वी तूंबड़ी खिला दी; ऐसे अधम पाप के फलस्वरूप वह रानी मरण कर अनेक तिर्यंच योनियों में भ्रमण कर, पश्चात् मनुष्य भव में एक चाण्डाल की पुत्री हुई। उसके शरीर से अत्यंत दुर्गंध आती थी। सभी ने उसे बहिष्कृत कर जंगल में छोड़ दिया।

बहुत समय बाद किसी शुभयोग से दिगम्बर मुनिराज का सान्निध्य प्राप्त कर मंद कषाय से शुभभावरूप व्रतों का पालन करने से मरण कर, वह अगले भव में पुराने पाप कर्मों का संक्रमण कर तिलकमती नाम की रूपवती और सुगंधवती हुई। वह तिलकमती व्रतादि अंगीकार करके समाधिमरण पूर्वक स्त्री पर्याय छेदकर ईशान स्वर्ग में दो सागर की आयु वाला देव हुआ। आगामी भव में वह निर्वाण को प्राप्त करेगा।

इस कथा से यह शिक्षा मिलती है कि हमें मूलत: तो कषायरहित शुद्ध भाव की प्राप्ति का ही उपाय करना चाहिए, लेकिन जब तक वैसा न हो सके, तब तक पाप से बचने हेतु तत्त्वाभ्यास के साथ बुद्धिपूर्वक शुभभावरूप व्रतादि में प्रवर्तन करना चाहिए।

7. रत्नत्रयव्रत - यह व्रत दशलक्षण पर्व के अंतिम दो दिन तथा

उसके पश्चात् एक दिन; इस तरह त्रयोदशी से पूर्णिमा तक कुल तीन दिन तक चलता है।

इन दिवसों में रत्नत्रय की आराधना मुख्य है तथा व्यवहार धर्म की स्थिति हेतु प्रोषधोपवास आदि करने का नियम भी शास्त्रों में आता है।

एक कथानक के अनुसार एक वैश्रवण नाम का राजा, जो मुनिराज का उपदेश सुनकर रत्नत्रयव्रत का पालन करता हुआ मरण कर स्वर्ग में अहमिन्द्र हुआ; फिर वहाँ से चयकर मनुष्य होकर, दीक्षा लेकर 19वाँ तीर्थंकर मल्लिनाथ हुआ और फिर मोक्ष की प्राप्ति की।

यद्यपि इस पर्व को मनाने का मुख्य ध्येय तो रत्नत्रय का स्वरूप समझ कर, उसकी महिमा आना तथा सम्यग्दर्शनादिरूप रत्नत्रय की प्राप्ति करना है; तथापि इन दिनों व्यवहार-धर्मरूप प्रोषधोपवास करने की भी परंपरा है।

तात्पर्य यह है कि द्वादशी को एकाशन; फिर त्रयोदशी, चतुर्दशी व पूर्णिमा - इन तीन दिनों तक उपवास तथा प्रतिपदा/एकम/पडवा को एकाशन करना चाहिए। यह तो उत्कृष्ट विधि है; किन्तु जघन्यरूप से त्रयोदशी व पूर्णिमा को एकाशन तथा चतुर्दशी के दिन उपवास करके भी यह व्रत अंगीकार किया जा सकता है।

इन व्रतों का पालन करने में प्रथम तो **विषय व कषाय का त्याग हो;** फिर **चतुर्विध आहार** का भी त्याग होना चाहिए - **इन तीनों के होने का नाम ही उपवास है।** साथ ही इन दिनों विशेषरूप से तत्त्वचिंतन के साथ तीनों समय सामायिक भी करना चाहिए।

8. अनंत चतुर्दशी - यह पर्व दशलक्षण पर्व के अंतिम दिन चतुर्दशी को मनाया जाता है। यह पर्व जैन तो क्या अजैनों में भी ज्यादा प्रसिद्ध है। यद्यपि इस पर्व के संबंध में उनकी मान्यता बिल्कुल अलग है; किन्तु जैन धर्म के अनुसार तो यह पर्व वर्तमान चौबीसी के 12वें तीर्थंकर वासुपूज्य भगवान के निर्वाण (मोक्ष) कल्याणक के उपलक्ष्य में मनाया

जाता है। इस दिन श्री वासुपूज्य भगवान को निर्वाण लाडू भी चढ़ाया जाता है।

विशेष - वासुपूज्य भगवान का निर्वाण उत्तरपुराण, पर्व-58 श्लोक 53 के अनुसार भाद्र शुक्ला चतुर्दशी के दिन हुआ; किन्तु तिलोयपण्णत्ती 4/1196 के अनुसार फाल्गुन कृष्णा पंचमी के दिन चम्पापुर से मोक्ष पधारे। भगवान के निर्वाण कल्याणक मनाने की तिथि उत्तरपुराण के अनुसार चल पड़ी, उसका कारण यह है कि तिलोयपण्णत्ती ग्रन्थ प्राचीन होने पर भी उसकी भाषा प्राकृत होने से बाद में प्रकाश में आया; किन्तु उत्तरपुराण प्रथमानुयोग का सरल शास्त्र होने से व पहले प्रकाश में आ जाने से उसके अनुसार यह परंपरा चल पड़ी।

9. क्षमावाणी - यह पर्व जैनों द्वारा मनाया जानेवाला विशेष पर्व है। यह प्रतिवर्ष दशलक्षण पर्व के बाद आता है। यह भादों के माह में मनाये जाने वाले दशलक्षण के पश्चात् आश्विन कृष्णा प्रतिपदा के दिन मनाया जाता है।

इस दिन मात्र मनुष्य ही नहीं; किन्तु विश्व के प्राणी मात्र के प्रति क्षमाभाव धारण किया जाता है। इसकी मनाने की प्रक्रिया में सर्वप्रथम सब जीवों को क्षमा किया जाता है, पश्चात् सभी से क्षमा माँगी जाती है।

वास्तव में देखा जाये तो इस पर्व का मूल ध्येय अपने क्षमास्वभावी आत्मा का आश्रय लेना है और क्षमा भी अपने आत्मा से ही माँगना है तथा क्षमा अपने आत्मा को ही करना है; क्योंकि हमने अनादि से आज तक अपने आत्मा को न जानकर परद्रव्य व परभावों में अपनत्व कर स्वयं को ही दु:ख दिया है। यदि हम स्वयं को जानकर, स्वयं का ही आश्रय लें तो सच्चे अर्थों में क्षमा दिवस पर्व मनाना सार्थक होगा।

इस तरह इन श्रावण-भादों दो माह में सभी पर्वों का यथार्थ भाव जानकर सच्चे अर्थों में पर्वों को मनायें, जिससे स्वयं का और जन-जन का कल्याण हो सके - ऐसी पवित्र भावना के साथ विराम। ○○○

सही मायने में 'रक्षाबंधन'

'रक्षाबंधन' शब्द सुनकर बहिनों को अपने भाईयों की तथा भाईयों को अपनी बहिनों की याद आना स्वाभाविक ही है और क्यों न हो, जहाँ भारत ही नहीं; बल्कि नेपाल तथा मॉरिशस जैसे देशों की समाज ने, संस्कृति ने एवं वहाँ के इतिहास के पन्नों ने भी जिसे मान्यता दी हो तथा बड़ी ही शिद्दत से भाई-बहिन को करीब लाने का प्रयास किया हो; **'राखी उर्फ रक्षाबंधन'** आदि प्रसिद्ध बड़े-बड़े नाटकों ने जिसे सराहा हो, **'भैया मेरे राखी के बन्धन को निभाना'** आदि फिल्मी गीतों ने भी जहाँ जनमानस के अधर पटलों (होठों) पर अपना स्थान बनाया हो; धार्मिक ग्रन्थ या पुराण भी जिसके जिक्र से अछूते न रह पाये हों, तब वह पावन पुनीत दिवस किसे अपनी ओर आकर्षित नहीं करेगा?

श्रावण मास की पूर्णिमा को मनाए जाने वाले इस त्यौहार के दिन प्रात: स्नानादि से निवृत्त होकर महिलाएँ और लड़कियाँ अपने भाईयों की भाल (मस्तक) पर हल्दी व चावल से तिलक तथा दाहिनी कलाई पर आपसी प्रेम का, रक्षा की सौगन्ध का तथा भाईयों की दीर्घायु का प्रतीक रेशमी धागा (राखी) बाँधकर अपने भाईयों से उपहार-स्वरूप कोई भेंट (गिफ्ट) या धनादिक ग्रहण कर प्रमुदित होती दिखाई देती हैं।

रक्षा की भावना से राखी बाँधना ही रक्षाबंधन है। भारत देश के विविध प्रान्तों में इसे 'राखी', 'श्रावणी', ' सलूनो', 'अवनि अवित्तम' 'नारियल पूर्णिमा' आदि अनेक नामों से जाना जाता है।

यह त्यौहार अनेक दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण होते हुए भी वर्तमान युग की समाज ने उसे मात्र भाई-बहिन के प्रेम में सीमित कर बहुत ही संकुचित और संकीर्ण बना दिया है।

कोई इस त्यौहार को मात्र हिन्दुओं का त्यौहार कहता है तथा कोई इसे मात्र भाई-बहिन को ही मनाने का अवसर देना चाहता है; किन्तु क्या रक्षा या प्रेम की जरूरत मात्र किसी एक धर्म के अनुयायियों को है? क्या भाई

मात्र अपनी बहिन की ही रक्षा करे ? क्या वह अपने माता-पिता, पत्नी या पुत्र-पुत्री की रक्षा के प्रति जिम्मेदार नहीं है ? क्या इस दिन हम समाज और देश की रक्षा का संकल्प नहीं ले सकते ? क्या हमारे आसपास के वातावरण में रहने वाले पशु तथा आकाश में चहचहाते प्रसन्नचित्त पक्षियों की सुरक्षा; विलुप्त होती जा रही प्रजातियों का संरक्षण; हमारे चारों ओर का सौम्य व मनोरम पर्यावरण तथा जिनके बिना हम अपने जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकते - ऐसे जल व वनस्पति की रक्षा करना हमारी जिम्मेदारी नहीं ? और इनके बिना क्या अकेला भाई अपनी बहिन के अस्तित्व को कायम रख पायेगा ?

इतिहास के आईने में झांकने तथा पुराणों के पन्ने पलटने पर संकीर्णताओं की संकुचित वृत्ति पर कुठाराघात लगे बिना न रह सकेगा।

भविष्य पुराणादि हिन्दु धर्मग्रन्थों में ही दानवों पर विजय प्राप्ति हेतु इन्द्राणी (पत्नी) द्वारा इन्द्र (पति) को रक्षाकवचरूपी धागा बाँधने की घटना (श्रावण पूर्णिमा का दिवस) तथा उन्हीं के अन्य स्कन्धपुराण, पद्मपुराण व श्रीमद्भागवत् में वामनावतार नामक कथा प्रसंग में विष्णुजी की वापसी हेतु लक्ष्मीजी द्वारा शत्रु स्वरूप दानवेन्द्र राजा बलि को राखी बाँधना (श्रावण पूर्णिमा के दिन) तथा महाभारत युग में विजय प्राप्ति हेतु श्रीकृष्णजी की सलाह पर सैनिकों तथा पाण्डवों को राखी बाँधने वाली घटनाएँ वर्तमान प्रचलित रक्षाबंधन की परम्परा में एक प्रश्नचिह्न खड़ा नहीं करतीं ?

भारत देश के प्राच्य काल में राजपूतों को विजयश्री हेतु उनकी स्त्रियों द्वारा रक्षासूत्र बाँधना, गुरुकुलों में प्राप्त ज्ञान के सही प्रयोग हेतु आशीर्वचन स्वरूप गुरुओं द्वारा शिष्यों को तथा विदाई लेते समय शिष्यों द्वारा गुरुओं को राखी बाँधना; परस्पर में सम्मान की सुरक्षा हेतु पुरोहित यजमान को व यजमान पुरोहित को, इसी तरह भाईचारे को बढ़ावा देने हेतु राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पुरुष सदस्यों का परस्पर में तथा राजस्थान प्रान्त में ननद द्वारा अपनी भाभी को राखी बाँधना, क्या ये रक्षा के सही व उचित

मायने को कायम रखकर वर्तमान पद्धति में एक और अध्याय की सृष्टि नहीं करते ?

अधिक क्या कहें नेपाल देश के पहाड़ी इलाके में गुरु व भागिनेय (भानजा) के हाथ से रक्षासूत्र के बंधन की परम्परा क्या हमें प्रचलित सीमित दायरे को अधिक बढ़ाने हेतु मजबूर नहीं करती ?

इसके अतिरिक्त मुगलकाल के दौर में मेवाड़ राज्य की रक्षा हेतु राणा सांगा की विधवा पत्नी कर्मवती (कर्णवती) द्वारा मुस्लिम राजा हुमायूँ को राखी भेजना तथा अपने पति सिकंदर की रक्षा हेतु हिन्दु शत्रु पुरुवास को राखी बाँधना – ये उदाहरण क्या अन्य धर्मों में भी रक्षाबंधन की प्रथा की ओर संकेत नहीं करते ?

शताधिक वर्ष पूर्व जन्मे प्रसिद्ध लेखक रविन्द्रनाथ टैगोर ने रक्षाबंधन के संकुचित अर्थ को तिलांजलि देते हुए इस पर्व को इंसानियत का, भाईचारे का, देश की रक्षा का, पर्यावरण की रक्षा तथा लोगों के हितों की रक्षा का पर्व घोषित किया है।

उपर्युक्त समस्त तथ्यों से प्रतिफलित होता है कि रक्षाबंधन पर्व मात्र हिन्दु धर्म या भाई-बहिन तक सीमित न होकर साम्प्रदायिकता की गंध से परे जन-जन की सुरक्षा की भावना का पर्व है।

जैनधर्म के अनुसार रक्षा की भावना का प्रचलन तो अनादिकाल से ही चला आ रहा है। तथापि जो रक्षाबंधन वर्तमान प्रचलित दिवस को इंगित करता है, उस पर एक घटना विशेष को स्थान दिया गया है। वह घटना है – ''अकंपनाचार्य आदि 700 मुनिराजों की रक्षा''।

लाखों वर्षों पूर्व 19वें तीर्थंकर भगवान मल्लिनाथ के बाद तथा 20वें तीर्थंकर भगवान श्री मुनिसुव्रतनाथ के काल के पूर्व हस्तिनापुर नगर में उज्जयिनी नगरी का पूर्वमंत्री तथा तत्कालीन सप्तदिवसीय राजा बलि द्वारा पूर्व बैरवशात् अकंपनाचार्य आदि 700 मुनिराजों पर घोर उपसर्ग किया गया, क्षुल्लक पुष्पदंत से इस बात की जानकारी मिलने पर मुनि विष्णुकुमार

ने दीक्षा छेदकर बौने ब्राह्मण का रूप बनाकर विक्रियाऋद्धि के प्रयोग से मुनिराजों की रक्षा की। (दिवस-श्रावण की पूर्णिमा)

मुनिराजों की रक्षा का वास्तविक अर्थ है - धर्मात्माओं की रक्षा, धर्मात्माओं की रक्षा का अर्थ है - धर्म की रक्षा तथा धर्म वस्तु के स्वभाव का नाम है। कहा भी है - **'वत्थु सहावो धम्मो'**। वह स्वभाव सदा पर से निरपेक्ष, परिपूर्ण, अपरिवर्तनशील तथा कभी अभाव न होने वाला होता है। जैसे अग्नि का स्वभाव गरम तथा जल का स्वभाव शीतल है; वैसे ही जीव का स्वभाव चेतनस्वरूप (ज्ञान-दर्शन) है तथा अन्य अनन्त द्रव्यों के अपने-अपने स्वभाव सदा पर से निरपेक्ष और परिपूर्ण हैं; वस्तु के ऐसे स्वभाव की स्वीकृति ही सही मायने में रक्षा है।

वास्तव में देखा जाये तो स्वतः रक्षित स्वभाव की रक्षा कौन कर सकता है? क्या कोई अग्नि की उष्णता की रक्षा कर सकता है? पानी की शीतलता की रक्षा कर सकता है? जीव के चेतनादि स्वभावों की रक्षा कर सकता है? कदापि नहीं। साथ ही न ही उनमें परिवर्तन आदि किया जा सकता है। अतः विश्व के समस्त पदार्थों के स्वभाव की यथावत् स्वीकृति ही सच्ची रक्षा है तथा उस रक्षा का दृढ़ संकल्प ही सच्चा रक्षाबंधन है।

उपर्युक्त विवेचन से हम कहेंगे कि श्रावण की पूर्णिमा का दिवस रक्षा के संकल्प का दिवस है; किन्तु भावना की दृष्टि से तो यह पर्व प्रतिदिन व प्रतिक्षण के लिए ही समर्पित है।

अतः हम कह सकते हैं -

रक्षा करे यहाँ कौन किसकी स्वतः रक्षित भाव है,
भक्षक बने यहाँ कौन जब उस भाव का न अभाव है।
मैं बचा अथवा मार सकता अज्ञ का ये विभाव है,
इस सत्य का स्वीकार ही बस यही रक्षा भाव है।।

○○○

जानें रहस्य 'दशलक्षण' का

दुनिया में ऐसा कौन व्यक्ति होगा जो जैनधर्म में मान्य जीवन के अन्तस्तत्त्व में सदाकाल विद्यमान अपने क्षमा आदि स्वभाव से अपरिचित रहने की घोषणा करता हुआ स्वयं को अज्ञानता का प्रमाण-पत्र प्रदान कराना चाहेगा?

तात्पर्य यह हुआ कि हमें क्षमा माँगना और करना आना चाहिए; इस बात से आज कोई भी अपरिचित नहीं है और सबसे बड़ी विशेषता तो यह है कि क्षमा स्वभाव, प्राणीमात्र के अंदर विद्यमान है; वह कहीं से लाया या प्राप्त नहीं किया जाता।

गजब की बात तो यह है कि ऐसा स्वभाव सबके अंदर विद्यमान रहने पर भी अज्ञानी प्राणियों को इसकी खबर नहीं और इसी से अनजान जीव अत्यन्त दु:खी हो रहे हैं।

यद्यपि क्षमा आदि आत्मा के स्वभाव हैं और उनकी व्यक्तता, उनकी पहिचान से ही होगी। वे जहाँ विद्यमान हैं, वहाँ खोजने से ही होगी तथा उन्हें जानने और समझने का अवसर अनादि से सभी जीवों को प्राप्त होता रहा है, जिन्हें पर्व संज्ञा देकर, उन्हें किसी न किसी रूप में मनाकर, जान कर, समझकर अन्तस्तत्त्व में छिपे उन स्वभावों की पहिचान हो सके।

खास बात तो यह है कि इन्हें पर्व संज्ञा देकर किसी सम्प्रदाय विशेष में सीमित नहीं किया, बल्कि उनके अभेदरूप जन-जन का पर्व दशलक्षण महापर्व कह दिया।

यह पर्व न तो किसी व्यक्ति विशेष से संबंधित है और न किसी घटना विशेष से। यही कारण है कि इसमें किसी विशेष साम्प्रदायिकता की गंध भी नहीं आती; क्योंकि **जहाँ व्यक्तिवाद खड़ा होता है, वहाँ बँटवारा शुरू हो जाता है और जहाँ किसी विशेष घटना का उल्लेख होता है, वहाँ विवादों की दुर्घटनाएँ सुघटित होने लगती हैं।**

यह पर्व तो त्रैकालिक है, तात्कालिक नहीं; जन-जन का है, मात्र जैनों का नहीं; आत्मस्वभाव का है, बाह्याडंबर का नहीं। जो भी जीव, इन्हें जाने, पहिचाने उस प्रत्येक प्राणी का कल्याण होगा।

यद्यपि यह पर्व अनादि-निधन शाश्वत है; तथापि इसमें भी यत्किंचित् घटना विशेष का समावेश किया है, किन्तु वह घटना भी किसी जाति या सम्प्रदाय विशेष को आमंत्रित नहीं करती, परन्तु वह एक स्वाभाविक व प्राकृतिक सृष्टि के ह्रास और उसके संवर्धन के पक्ष का ही विहंगम दृश्य प्रस्तुत करती है।

सृष्टि के आरंभ और अंत पक्ष को लगभग सभी ने स्वीकार किया है। जैनागमानुसार भी भरत और ऐरावत क्षेत्र में इसी तरह की व्यवस्था स्वीकार की गई है।

जैन शास्त्रानुसार 20 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का एक कल्पकाल होता है। उसके दो भेद हैं - एक उत्सर्पिणी और एक अवसर्पिणी। दोनों का काल 10-10 कोड़ाकोड़ी सागरोपम कहा है। इन दस-दस कोड़ाकोड़ी सागरोपम काल को भी छह-छह कालों में विभक्त किया है।

वहाँ अवसर्पिणी (ह्रास का काल) के अंतिम छठवें काल के अंत में जब 49 दिन शेष बचते हैं, तब सात-सात दिन बर्फ, क्षारजल, विषजल, धूम्र, धूलि, वज्र और अग्नि की वर्षा होती है। इससे भरतक्षेत्र के आर्यखण्ड में पृथ्वी के ऊपर स्थित एक योजन वृद्धिंगत भूमि जलकर नष्ट हो जाती है और वहाँ स्थित सभी प्राणी मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इस समय दयालु देवों और विद्याधरों द्वारा कुल 72 युगलों को विजयार्ध पर्वत की श्रेणियों में सुरक्षित पहुँचा दिया जाता है।

इस तरह **छठवें काल का अंत आषाढ़ी शुक्ल पूर्णिमा को होता है तथा नवीन युग का आरंभ उसके अगले दिन श्रावण कृष्णा प्रतिपदा से होता है** और इस तिथि से 49 दिनों तक सुवृष्टियों के माध्यम से सृष्टि की रचना प्रारंभ होती है। तब सात-सात दिन तक पुष्कर, क्षीर,

अमृत, रस, औषध व सुगंध जलादि की वर्षा होने से जली हुई भूमि शीतल हो जाती है। **उन 49 दिनों की गणना भाद्रपद शुक्ला चतुर्थी को पूर्ण होती है।**

तदनन्तर शीतल गंध को ग्रहण कर गुफाओं में छिपे हुए मनुष्य और तिर्यंच बाहर निकलने लगते हैं। यह दिन उनके आयु, तेज, बुद्धि, बाहुबल, क्षमा, धैर्य आदि के विकास का मांगलिक दिन माना जाता है। इसलिए **सृष्टि का वृद्धिंगत सुखद प्रारंभ भाद्रपद शुक्ला पंचमी से होता है, जो कि चतुर्दशी तक माना गया है।**

इसतरह प्राणी प्रलय काल के दु:खद अनुभव से विमुक्त होकर एक सुखद अनुभव की ओर बढ़ने तथा अपने पूर्वकृत पापकर्मों का विचार कर खेदखिन्न होते हुए मंदकषाय रूप प्रवर्तन से व्यवहार धर्मपने को प्राप्त होते हैं। इसलिए इसी काल की तिथियों को धर्माराधना की तिथि स्वीकार कर उत्तमक्षमादि दशलाक्षणी धर्म का शुभारंभ स्वीकार किया है।

इसप्रकार भाद्र शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी तक यह पर्व धर्माराधना के रूप में मनाया जाता है। इन दिनों में लोग सांसारिक कार्यों का त्याग कर धर्माराधन रूप कार्यों में प्रवर्तते हैं।

वास्तव में धर्म तो एक ही है तथा एक समय में उत्पन्न होने वाली पर्याय है, किन्तु उसे क्रोधादि के अभावरूप निमित्तों का ज्ञान कराने हेतु दश प्रकार का कहा है तथा इन्हें समझने और समझाने के उद्देश्य से 10 दिनों में विभक्त कर दशलाक्षणी बना दिया गया है।

एक बात और ध्यान रखने योग्य है कि इस पर्व की पुनरावृत्ति वर्ष में दो बार और होती है। वे तिथियाँ निम्नानुसार हैं – 1. चैत्र शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी तथा 2. माघ शुक्ला पंचमी से चतुर्दशी तक।

इसप्रकार इस महापर्व को वर्ष में तीन बार मनाकर उन दशलाक्षणी धर्मों को जीवन में उतारने का उद्यम करना सभी जीवों को श्रेयस्कर है।

विशेष - इन दिनों में सभी की प्रवृत्ति त्याग की ओर सहज होती है; तदनुसार व्रत, उपवास की ओर विशेष रुझान होता है और होना भी चाहिए; किन्तु ध्यान रहे उपवास मात्र पेट खाली रखने का नाम नहीं, किन्तु उसमें तीन विशेषताएँ होना अनिवार्य हैं - 1. कषाय त्याग, 2. पंचेन्द्रिय विषय त्याग और 3. भोजन त्याग। इन तीनों बातों का ध्यान रखकर ही उपवासरूप प्रवर्तन योग्य है।

ये दिवस अंतरंग क्रोधादि कषायों व रागादि के त्याग की प्रेरणा देने वाले तथा आत्मविशुद्धि की प्रेरणा देने वाले होने से हम सभी के लिए अनुकरणीय तथा अन्य सभी के लिए प्रेरणादायी हैं।

दशलक्षण का संक्षेप सार

1. दशलक्षण के नाम - उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य तथा उत्तम ब्रह्मचर्य।

2. दशलक्षणों के पूर्व लगा 'उत्तम' शब्द सम्यग्दर्शन व सम्यग्ज्ञान का सूचक है। साथ ही उत्तम विशेषण का प्रयोग ख्याति व पूजादि की भावना की निवृत्ति हेतु है। - (चारित्रसार, 57/1)

3. दशलक्षण का सामान्य भाव - 1. क्रोध का अभाव क्षमा, 2. मान का अभाव मार्दव, 3. माया का अभाव आर्जव, 4. लोभ का अभाव शौच, 5. 'सत्' स्वभाव में स्थिरता व असत्य का अभाव सत्य, 6. स्वरूप में संयमित होना संयम, 7. इच्छा का निरोध व स्वरूप में प्रतपन तप, 8. राग-द्वेष से निवृत्ति त्याग, 9. सर्वपरिग्रह से निवृत्ति आकिंचन्य तथा 10. आत्मस्वरूप में रमण ब्रह्मचर्य है।

4. ये सभी दशलक्षण धर्म निश्चय व व्यवहार दो रूप हैं, उनमें निश्चय धर्म तो स्वाभाविक परिणमनस्वरूप तथा कषाय व राग-द्वेषरहित वीतरागरूप होने से मोक्षस्वरूप व मोक्ष के कारणरूप हैं और व्यवहारधर्म मंदकषायरूप बंध का कारणरूप होने से संसारमय है।

5. ये धर्म चौथे व पाँचवें गुणस्थान वाले के क्रोधादि की निवृत्तिरूप यथासंभव होते हैं तथा मुनियों के प्रधानता से होते हैं (रा.वा.9/6) किन्तु अज्ञानी मिथ्यादृष्टि के नहीं होते।

6. ये धर्म चतुर्थ गुणस्थान से प्रारंभ होकर यथायोग्य कषायों के अभावपूर्वक वृद्धिंगत होते हुए सर्वकर्मविमुक्त सिद्धावस्था में पूर्णता को प्राप्त होते हैं।

7. संयमधर्म, षट्कायिक जीवों की हिंसा व इन्द्रिय-मन के विषयों से निवृत्ति रूप स्वरूप स्थिरता है तथा तप धर्म, इच्छाओं के निरोधपूर्वक स्वरूप स्थिरता है।

8. धर्म तो वास्तव में एक ही है; किन्तु क्रोधादि के अभावात्मक निमित्त की ओर से उसके दश भेद कहे जाते हैं।

9. धर्म के सभी लक्षण एक साथ व एक समय की पर्याय में प्रगट होते हैं, अतः उनमें मूल में तो कोई क्रम नहीं; किन्तु क्रम संबंधी दो परंपराओं में जहाँ चौथे नंबर पर शौचधर्म है, वह क्रोधादि के त्याग में चौथी लोभ कषाय के अभावरूप क्रम में है तथा जहाँ चौथे पर सत्य व पाँचवें क्रम पर शौच रखा, वहाँ सत् स्वभाव में परिपूर्ण स्थिरतारूप सत्य धर्म के बाद उत्तम शौचरूप पवित्रता प्रगट होती है - ऐसा विवक्षावश कथन जानना चाहिए।

ये सभी धर्म के लक्षण मोक्षस्वरूप व मोक्ष के मार्ग हैं, इन्हें प्रकट करना अत्यन्त सरल है; क्योंकि ये आत्मा के स्वयं के स्वभावभाव हैं। उन्हें पहचानना, जानना व उनमें रमने से ये पर्याय में प्रकट होते हैं व सुखमय मोक्षदशा की प्राप्ति में कारण बनते हैं।

इन्हें हम पर्याय में भी प्रकट करें - ऐसी भावना है।

○○○

जैनियों की 'दीपावली' कैसी हो ?

देश क्या विदेश के भी कई हिस्सों में मनाई जाने वाली दीपावली हिन्दु व जैन क्या, अन्य मतावलम्बी भी अपनी निजी मान्यताओं से इस महान प्रसिद्ध पर्व को बड़ी ही धूमधाम से मनाते हैं। यह पर्व कोई किसी के संयोग के निमित्त तो कोई किसी के वियोग के प्रसंग में मनाता है।

इस पर्व को मनाने वाले बहुतायत संख्या वाले हिन्दु धर्म मतावलम्बी हैं। इसके पीछे उनकी सर्व प्रसिद्ध मान्यता है कि इस दिन श्रीरामचन्द्रजी 14 वर्ष का वनवास पूर्ण कर अयोध्या वापस आये थे। किन्तु इसी धर्म में अन्य मान्यताओं की भी कमी नहीं है। महाभारत ग्रन्थ के अनुसार कोई पाण्डवों की वनवास से वापसी से तो कोई समुद्र मंथन से उत्पन्न हुई लक्ष्मी के जन्मदिन से, कोई श्रीकृष्णजी द्वारा नरकासुर वध से तथा कोई श्री विष्णुजी द्वारा नरसिंहरूप धारण कर हिरण्यकश्यप वध से दीपावली के प्रसंग को जोड़ने का प्रयास करता है।

हिन्दु धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों में सिक्ख अपने छठे गुरु हरगोविन्दजी की जेल से रिहाई से तो पंजाबी स्वामी रामतीर्थ के जन्मदिवस व उनकी समाधि से तथा आर्य समाजवाले महर्षि दयानन्दजी सरस्वती के देहवियोग से दीपावली मनाते हैं। **कारण कि ये सभी घटनाएँ एक ही तिथि में घटित हुई।**

क्या कभी जैनियों ने सोचा कि हम दीपावली क्यों मनाते हैं ? आखिर इस दिन ऐसा क्या हुआ, जिससे जैन भाई-बहिन इस पर्व को अति उत्साह और मनोरंजन के साथ मनाते हैं। यदि जानते हैं तो सहीरूप से क्यों नहीं मनाते और यदि नहीं जानते तो उन्हें प्रसंगवश दीपावली का सही स्वरूप जानकर यह महान पर्व अवश्य मनाना चाहिए।

प्रथम तो यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि इस दीपावली शब्द

का अर्थ क्या है और इसका प्रचलन कैसे हुआ? 'दीपावली' शब्द 'दीप+आवली' से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है दीपकों की पंक्ति। हरिवंशपुराण (सर्ग-66/21) में इस पर्व के लिए 'दीपालिका' शब्द का प्रयोग हुआ है, जिसका अर्थ है (दीप+आलिका) दीपकों की पंक्ति।

इसीतरह 'आलापपद्धति' ग्रन्थ (नय अधिकार, सूत्र 65) में देवसेनाचार्य ने भूतनैगमनय के प्रसंग में इसी के लिए 'दीपोत्सव' (अद्य दीपोत्सवदिने श्री वर्धमानस्वामी मोक्षं गत:) शब्द का प्रयोग किया है। कालान्तर में 'दीपालिका' शब्द 'दीपमालिका' और फिर 'दीपावली' और संक्षेप में दिवाली (दिव्=प्रकाश+आलि=पंक्ति) हो गया।

यहाँ 'दीपकों की पंक्ति' भी विचारणीय है। जब भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण हुआ, उस समय अँधेरा होने से चतुर्निकाय के देवों ने दीपकों से प्रकाश कर दिया (हरि.पु.66/19) और फिर देवों ने व श्रेणिक आदि राजाओं ने अपनी प्रजा के साथ भगवान के निर्वाण कल्याणक की पूजा की। इसी प्रकाश व दीपकों की पंक्ति के कारण वह महान पर्व 'दीपालिका', 'दीपोत्सव', 'दीपमालिका', दीपावली अथवा दिवाली नाम से प्रसिद्ध हो गया।

वास्तव में देखा जाए तो इस महान पर्व की प्रसिद्धि दीपकों की पंक्ति से न करके भगवान के निर्वाण से करना ज्यादा उचित प्रतीत होता है; तभी तो अनेक आचार्यों ने इसे वीर/महावीर निर्वाणोत्सव शब्द से संबोधा है।

अब जरा यह भी जानना आवश्यक है कि श्री महावीर स्वामी का निर्वाण कब हुआ? **भगवान महावीर का निर्वाण कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी के दिन प्रत्यूष काल (रात्रि का अवसान/सूर्योदय के पूर्व प्रात:काल) में स्वाति नक्षत्र के रहते हुए पावापुर से हुआ।**

- (ति.प.4/1208)

इसीतरह उत्तरपुराण (पर्व 76/श्लोक 510-511), असगकवि रचित वर्धमानचरित्र (सर्ग 18/97-98) तथा जयधवलाटीका, निर्वाणभक्ति आदि में भी यही तिथि प्राप्त होती है।

देखा जाये तो यह दिन किसी के संयोग का नहीं, बल्कि हमारे धर्म पिता के वियोग का है। तब सोचिये! क्या अपने किसी के वियोग के दिन हर्षोल्लास होता है या फिर कोई गंभीरता होती है? लेकिन यह विचार किये बिना इस दिन बहुभाग जैन समाज वास्तविक वीर निर्वाणोत्सव मनाने की जगह मात्र दीपक जलाना, पटाखे फोड़ना, खाना-पीना तथा मौज-मस्ती करके आनन्द मनाती है।

कभी-कभी तो ये भी समझ नहीं आता कि इस निर्वाणोत्सव के दिन मोक्षकल्याणक मनाने के साथ लक्ष्मी-पूजन, बहीखाता व तराजू-पूजन कहाँ से आ गए? निर्वाणोत्सव के नाम पर शक्कर आदि से बने हुए लड्डुओं का चढ़ाना व महान हिंसक पटाखों की फड़फड़ाहट कहाँ से अंदर घुस गई?

और तो और निर्वाणोत्सव के एक दिन पूर्व नरकासुर वध की मान्यता से नरक चतुर्दशी, छोटी दीपावली अथवा रूप चतुर्दशी, जैनधर्म में कैसे प्रवेश कर गई? इसके अलावा दिवाली के दो दिन पूर्व त्रयोदशी के दिन हिन्दु मान्यतानुसार धन्वन्तरि का जन्मदिवस, कुबेर कृपा, लक्ष्मी आगमन दिन तथा इस दिन सोना, चाँदी व धातुओं के बर्तन आदि खरीदने से 13 गुणा धनवृद्धि जैसी मान्यताओं को जैनों ने कैसे स्वीकार कर लिया?

उपर्युक्त प्रकार की मान्यताएँ किसी भी अपेक्षा से जैनों के हित में नहीं तथा सभी सत्य से परे हैं। **यदि दीपावली को सही रूप में जानने, समझने और मनाने का मानस है तो अधोलिखित बिन्दुओं का आश्रय जरूर लेने योग्य है -**

1. चतुर्दशी की रात के अंतिम प्रहर में पावापुर से तीर्थंकर महावीर

स्वामी ने निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त किया, अतः इस अवसर पर वीरप्रभु की निर्वाण पूजन, इस भावना के साथ हो कि मैं भी उनके समान मोक्ष को प्राप्त करूँ।

2. यह पर्व मनायें तो गौतम गणधर की तरह कि वीर निर्वाण के बाद उसी दिन उन्हें भी केवलज्ञान प्राप्त हो गया और धर्मतीर्थ की अविच्छिन्न धारा प्रवाहित होती रही अर्थात् महावीर स्वामीवत् छह-छह घड़ी दिन में तीन बार [18 घड़ी (7 घंटे 12 मिनिट)] श्री गौतम गणधर की वाणी खिरती रही। धर्मध्वजा फहराती रही और अन्य जीव उसका लाभ लेते रहे।

3. यदि इस पर्व को दीपावली नाम देना हो और दीपक जलाना हो तो इस मान्यता और कार्यप्रणाली के साथ कि प्रातः श्री वीरप्रभु के निर्वाण के बाद शाम को ही श्री गौतम गणधर को केवलज्ञान की प्राप्ति-स्वरूप ज्ञान का दीपक प्रज्ज्वलित हुआ और ज्ञानरूपी दीपक से ज्ञान की आवली बनती गई और हो गई दीपावली। फिर उसके बाद श्री गौतम गणधर को मोक्ष की प्राप्ति और सुधर्माचार्य को केवलज्ञान, फिर सुधर्माचार्य को मोक्षप्राप्ति और जम्बूस्वामी ने केवलज्ञान के दीपक जलाकर सच्ची दीपावली मनाई।

4. यदि लक्ष्मी पूजन करना है तो करो, लेकिन कौनसी लक्ष्मी? केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी, जिसकी प्राप्ति वीरप्रभु से लेकर जम्बू स्वामी ने की। उसी लक्ष्मी की पूजन इस भावना के साथ करें कि हमें भी वह प्राप्त हो।

5. लाडू चढ़ाना हो तो चढ़ाओ, किन्तु शक्कर या मावा के नहीं, किन्तु निर्वाण के प्रतीक के रूप में नारियल के गोले चढ़ाओ, इस भावना के साथ कि हमें भी मोक्षफल की प्राप्ति होवे।

किन्तु इस दिन धन की लक्ष्मी, कुबेर, बहीखाता व तराजू आदि को पूजना साक्षात् गृहीत मिथ्यात्व है तथा रात्रि में दीपक जलाना भी हिंसा है

व पटाखे फोड़ने से तो महान हिंसा के साथ ध्वनि-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण, स्थल प्रदूषण एवं शरीर व जन-धन जैसी अनेक हानियाँ होती हैं - ऐसा जानकर तत्क्षण त्यागने योग्य है।

विशेष ध्यातव्य -

1. धनतेरस - जिनागम में यह धनतेरस शब्द या धनतेरस पर्व देखने को नहीं मिला। अनेक लोग कहते हैं कि वह तेरस धन्य हो गई, जिस दिन भगवान महावीर स्वामी का अंतिम उपदेश हुआ; किन्तु यह आगम और युक्ति से भी सही नहीं बैठता; क्योंकि तिलोयपण्णत्ती (4/1209) के अनुसार निर्वाणतिथि चतुर्दशी से दो दिन पूर्व महावीर स्वामी ने योग निरोध किया (वचन क्रिया/दिव्यध्वनि 2 दिन पूर्व बंद हो गई); फिर तेरस के दिन अंतिम उपदेश हुआ, यह नहीं बैठता।

इसी प्रसंग में कुछ लोगों का कहना है कि तेरस के दिन अंतिम उपदेश होने से वह तिथि धन्य हो गई; किन्तु विचार करें कि वीरप्रभु का अंतिम उपदेश होने से नुकसान ही हुआ; फिर उसे हम धन्य कैसे कह सकते हैं ?

इसीतरह कई लोग इसे 'ध्यान तेरस' भी सिद्ध करते हैं; कारण कि वीर स्वामी योग निरोध करके तेरस के दिन ध्यान पर बैठ गए थे। फिर प्रश्न है, वे चतुर्दशी को भी तो ध्यान में बैठे थे, उसे भी 'ध्यान चतुर्दशी' कहना चाहिए - ऐसा क्यों नहीं कहा ? वैसे करणानुयोग के नियमानुसार यह भी नहीं बैठता, क्योंकि सयोग केवली के तेरहवें गुणस्थान के अंतिम अन्तर्मुहूर्त में तीसरा सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाती शुक्ल ध्यान होता है; किन्तु सदाकाल नहीं व योग निरोध के बाद वाले काल में पूरे समय नहीं।

इसतरह यह धनतेरस या ध्यानतेरस पर्व उचित नहीं बैठता।

2. रूप चतुर्दशी - इसीतरह कई लोग चतुर्दशी के दिन को छोटी दीपावली या रूप चतुर्दशी कहते हैं और उसका अर्थ इसतरह करते हैं

कि इस दिन वीर प्रभु का अंतिम बार रूप देखने को मिला था। यद्यपि तर्क से इस अर्थ को सिद्ध कर सकते हैं; किन्तु आगम में इस 'रूप चतुर्दशी' नाम का भी उल्लेख देखने को नहीं मिलता।

3. लक्ष्मी पूजन - वास्तव में लक्ष्मी के दो भेद हैं - 1. केवलज्ञानादि/अनंतचतुष्टयरूप अंतरंग लक्ष्मी तथा 2. समवसरण आदि बहिरंग लक्ष्मी। उस समय वीर स्वामी के तो ये लक्ष्मी थी ही तथा शाम के समय गौतम स्वामी के केवलज्ञान प्रकट होने से उसी की पूजन की गई थी। इस अपेक्षा लक्ष्मी पूजन चली; किन्तु लोगों ने बाह्य वैभवरूप धन को लक्ष्मी मानकर उसकी पूजन प्रारंभ कर दी, जो कि सर्वथा अनुचित है।

4. गणेश पूजन - इन्द्रभूति गौतम गणधर के लिए कहीं-कहीं 'गौतम गणेश' शब्द का प्रयोग भी पढ़ने को मिलता है। यहाँ 'गणेश' शब्द का अर्थ विचारणीय है।

शास्त्रों में (त.सू.9/24) वैयावृत्त तप के भेदों में बाल, वृद्ध मुनियों के समुदाय को 'गण' कहा गया है और उनके जो ईश अर्थात् स्वामी, उसे 'गणेश' कहते हैं। गौतम स्वामी भी उन मुनियों के स्वामी होने से गणेश कहलाए। वीर निर्वाण के दिन ही शाम को गौतम गणेश को केवलज्ञान होने पर उनकी भी विशिष्ट पूजन हुई।

संभवत: लोगों ने संक्षेप में 'गौतम गणेश' को मात्र गणेश कहा होगा, जिससे कालान्तर में गणेश पूजन की मान्यता बन गई हो। इसलिए हिन्दू वर्ग तो लोक प्रसिद्ध गणेश पूजन करता ही है, कदाचित् अनेक जैनी भी इसी कार्य को करते हैं, जो अनुचित है।

5. दीपक जलाना - चूँकि वीर निर्वाण चतुर्दशी की रात के अंतिम प्रहर में होने से देवों ने दीपकों से प्रकाश किया; किन्तु दीपकों से आरती की हो या पूजनादि की हो, ऐसा शास्त्रों में नहीं मिलता। चूँकि अंधेरे को दूर करने हेतु दीपक जलाना, उस समय आवश्यक था; जिससे सभी को

वीर निर्वाण का पता चले। दूसरी बात हरिवंशपुराण के अनुसार (66/18) भगवान का निर्वाण होने पर चतुर्निकाय के देवों ने वीर प्रभु के गुणों का स्मरण करते हुए विद्यमान शरीर की पूजा की। चूँकि अँधेरे में सभी को शरीर नहीं दिखता; इसलिए प्रकाश किया गया।

उपर्युक्त तर्कों से सिद्ध है कि प्रकाश करना, उस समय मजबूरी वश आवश्यक था; किन्तु अब तो वर्तमान में सूर्यप्रकाश में ही प्रातः वीर निर्वाणोत्सव मनाया जा सकता है। इसलिए दीपकों का प्रकाश आदर्श न होने से दीपक जलाना आवश्यक नहीं तथा उन दीपकों की ओर से दीपावली कहने के स्थान पर शासन नायक श्री वीरप्रभु के निर्वाणोत्सव से हम इस महान पर्व को '**वीर निर्वाण**' कहें तो ज्यादा उत्तम है।

6. निर्वाणोत्सव किस तिथि में ? वास्तव में देखा जाए तो महावीर स्वामी का निर्वाण (मोक्ष) कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी को रात्रि के अंतिम प्रहर में हुआ; किन्तु उस समय अँधेरे में आरंभ होने से जीवहिंसा होगी; अतः प्रातः सूर्यप्रकाश में अमावस्या तिथि को यह पर्व मनाना उचित है। कदाचित् ऐसा जानकर परवर्ती परंपरा ने वीरनिर्वाण की तिथि ही अमावस्या मान ली, जो ठीक नहीं। निर्वाण तिथि चतुर्दशी मानकर निर्वाणोत्सव अमावस्या को मनाना उचित है।

7. यहाँ एक बात और जानने योग्य है कि रामायण व हिन्दू पुराणों में इस तिथि में श्री रामचन्द्रजी के वनवास से अयोध्या लौटने की चर्चा भी नहीं है।

8. वर्तमान प्रचलित संवतों में देश का सर्वाधिक प्राचीन वीर निर्वाण संवत् ही है, इससे जैनधर्म की विशेषता के साथ महिमा आती है और गर्व भी होता है।

आशा और विश्वास के साथ कि यह लेख पढ़कर सभी सच्चे अर्थों में दीपावली/निर्वाणोत्सव मनायें – ऐसी भावना है।

ooo

दानतीर्थ प्रवर्तन का प्रतीक 'अक्षय तृतीया' पर्व

आज के दिन जैन जगत को अक्षय तृतीया के नाम पर गन्ने के रस की याद आती है, इसलिए उनके लिए यह पावन दिवस 'अक्षय तृतीया अर्थात् गन्ने का रस' हो गया है। इस दिन लोग गन्ने का रस स्वयं पीते हैं और दूसरों को पिलाकर प्रसन्न होते दिखाई देते हैं; किन्तु इसके पीछे क्या रहस्य छिपा हुआ है, यह जानने का प्रयास भी नहीं करते।

हाँ, इतना अवश्य है कि इस संबंध में कुछ प्रबुद्ध लोग इतना तो अवश्य जानते हैं कि इस दिन मुनि ऋषभदेव को श्रेयांसकुमार द्वारा गन्ने के रस का आहार दिया गया था। बस, इससे ज्यादा गहराई में जाने का न तो किसी के पास समय है और न ही सोच।

यह जानकर सभी को आश्चर्य के साथ हर्ष भी होगा कि **वैशाख शुक्ला तृतीया** को याद किया जाने वाला **यह शुभ दिन आज से लगभग एक कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष पूर्व से प्रारंभ हुआ था।**

इस दिन भरत क्षेत्र में लगभग 18 कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष से बंद सत्पात्र निमित्तक दानतीर्थ का शुभारंभ हस्तिनापुर नगरी के राजा सोमप्रभ के लघु भ्राता श्रेयांसकुमार द्वारा 1 वर्ष 1 माह व 9 दिन से निराहारी मुनि ऋषभदेव को गन्ने के रस का आहारदान देकर हुआ था।

उस दिन की तिथि वैशाख शुक्ला तृतीया थी; तभी से यह मंगल दिन प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ तथा युगों-युगों तक याद की जाने के कारण और कभी न क्षय होने के कारण यह तिथि इतिहास के पन्नों में अमर हो गई; कभी न मिटने से अमिट हो गई तथा कभी न क्षय होने के कारण अक्षय हो गई।

ऐसा जानकर इतिहासवेत्ताओं ने इस महान आहारदान तीर्थ दिवस का नाम '**अक्षय-तृतीया**' प्रसिद्ध कर दिया।

इस दिन क्या हुआ, उसके विस्तार में जाने के पूर्व यह भी जान लेना अनिवार्य होगा कि इस दानतीर्थ के प्रवर्तन की आवश्यकता का भाव सर्वप्रथम किसे और क्यों आया?

बात उस समय की है जब राजा ऋषभदेव को अपने जन्मोत्सव के दिन (चैत्र कृष्णा नवमी) स्वर्ग की एक अप्सरा नीलांजना का नृत्य देखते हुए उसके देहविलय से वैराग्य उत्पन्न हो गया, तब उन्होंने समस्त राज्यपाट छोड़कर दिगम्बर जैनेश्वरी दीक्षा लेने का मानस बनाया। उस समय अपने स्वामी का अनुसरण करते हुए अन्य चार हजार राजाओं ने भी दीक्षा ग्रहण कर ली।

सभी जंगल की ओर निकल पड़े। मुनि ऋषभदेव तो दीक्षा लेते ही चार ज्ञान के धारी 6 माह के उपवास की प्रतिज्ञा लेकर स्थिर रहे, किन्तु उनके साथ दीक्षा लेने वाले मुनिधर्म से अनभिज्ञ 4000 द्रव्यलिंगी साधु क्षुधा-वेदना तथा सर्दी-गर्मी के दु:खों से संतप्त भ्रष्ट होकर वन के ही फलादि का भक्षण करने लगे व बल्कल आदि अनेक कुवेश धारण करके स्वच्छंद होकर प्रवर्तने लगे।

इस प्रसंग को देखकर सभी के हितार्थ मुनि ऋषभदेव मोक्षमार्ग की सिद्धि व संयम की स्थिति हेतु निर्दोष आहार की विधि का सभी को ज्ञान हो - ऐसा विचार मन में रखकर आहारचर्या हेतु निकल पड़े।

लेकिन ये क्या, वे जहाँ-जहाँ पधारते, लोग उन्हें अपना स्वामी जानकर नमन करते, उनकी सेवा में खड़े हो जाते, उन्हें रथ-हाथी, वस्त्राभूषण आदि देकर प्रसन्न करना चाहते तथा कोई तो उन्हें अपनी युवा कन्या देकर, उनसे विवाहने की इच्छा करते - ऐसा देखकर मुनिराज आगे चले जाते।

इसमें भी आश्चर्य की कोई विशेष बात नहीं थी; क्योंकि इससे पूर्व न तो किसी ने अभी तक नग्न दिगम्बर साधु को देखा था और न ही किसी ने आहार दिया था तथा राज्य अवस्था में ऋषभदेव को अपनी प्रजा

को इस विधि संबंधी कुछ सिखाने का विकल्प भी नहीं आया था। और अब मुनि अवस्था में सिखाने का अवसर भी न था; क्योंकि वे तो मौन थे, **क्योंकि नियम है कि तीर्थंकर मुनि दीक्षा से लेकर केवली होने तक मौन ही रहते हैं।**

लेकिन गजब है जब कार्य होने का समय आता है तो पाँचों समवाय स्वत: मिल जाते हैं। जब उनके इस तरह आहार हेतु विचरण करते हुए 7 माह व 9 दिन व्यतीत हुए, तभी वे विहार करते-करते कुरुदेश के हस्तिनापुर नगर में पहुँचे। उस समय वहाँ के राजा सोमप्रभ थे व उनके अनुज भ्राता श्रेयांसकुमार थे।

मुनिराज नगरी में पधारे हैं - ऐसा मंगल समाचार प्राप्त होने पर वे दोनों भ्राता वहाँ पहुँचे व उनके रूप को निहारने लगे। **उसी समय श्रेयांसकुमार को जातिस्मरण हुआ और पूर्वभव के संस्कार के कारण मुनिराज को आहार देने की बुद्धि जाग्रत हुई।**

जरा हम यह भी जान लें कि कौन थे ये श्रेयांसकुमार, जिन्हें पूर्व का जातिस्मरण हुआ? ये कोई और नहीं, बल्कि ऋषभदेव के पूर्ववर्ती आठ भवों से प्रत्येक भव में साथ में रहने वाले; कभी देवी के रूप में, कभी पत्नी के रूप में तो कभी पुत्र के रूप में संबंधी थे।

श्रेयांसकुमार, ऋषभदेव के पूर्व के आठवें भव में ईशान स्वर्ग की ललितांग देव की पर्याय में सर्वप्रिय देवी स्वयंप्रभा के रूप में थे। वे ही अगले भव में **ऋषभदेव की व्रजजंघ की पर्याय में उनकी पत्नी के रूप में 'श्रीमती' नाम वाले थे। इन दोनों ने मिलकर मुनिवर दमधर व मुनि सागरसेन को आहारदान दिया था, फिर दोनों का साथ परछांई की तरह चला।**

आहारदान के प्रभाव से दोनों अगले भव में विदेहक्षेत्र की उत्तरकुरु भोगभूमि में जुगलिया (युगल/जुड़वा - लड़का व लड़की) हुए। **वहाँ दोनों ने चारणऋद्धिधारी मुनि के उपदेश से सम्यक्त्व ग्रहण किया।**

चूँकि सम्यक्त्व के प्रभाव से स्त्री पर्याय छिद जाती है; अत: दोनों मरण करके दूसरे ईशान स्वर्ग में क्रमश: ऋषभदेव का जीव श्रीधरदेव व श्रेयांसकुमार का जीव स्वयंप्रभ देव हुए। उसके बाद पूर्व विदेह में क्रमश: सुविधिकुमार व उनका पुत्र केशव, फिर 16वें स्वर्ग में इन्द्र व प्रतीन्द्र, पुन: पूर्व विदेह में वज्रनाभि चक्रवर्ती तथा उनके 14 रत्नों में से एक रत्न धनदेव के रूप में हुए।

इसी चक्रवर्ती पर्याय में ऋषभदेव के जीव ने जगत्पूज्य तीर्थंकर प्रकृति का बंध किया।

वहाँ से दोनों सर्वार्थसिद्धि में अहमिन्द्र हुए और अब अंतिम वर्तमान भव में एक ऋषभदेव के रूप में तथा दूसरे श्रेयांस कुमार का जीव हस्तिनापुर के राजा सोमप्रभ के लघु भ्राता के रूप में हुए।

इसतरह भव-भवांतरों में असंख्य वर्षों तक दोनों का अटूट साथ रहा और जो वज्रजंघ व श्रीमती की पर्याय में दोनों ने मिलकर आहारदान दिया था, वही पूर्व का स्मरण अब काम में आया।

गजब संयोग है कि पहले दोनों ने मिलकर आहार दिया था, अब एक श्रावक के रूप में दूसरे को मुनिस्वरूप में आहारदान देकर कृतार्थ हो रहा है।

आगे चलकर जब ऋषभदेव मुनि को केवलज्ञान हुआ, तब श्रेयांसकुमार उनके गणधर बने।

इस कथानक के प्रसंग से कुछ समझने व ग्रहण करने योग्य तथ्य-

1. संस्कार भव-भवांतरों तक बने रह सकते हैं। तभी तो श्रेयांसकुमार के मुनिराज को आहार देने के पिछले 7वें भव के संस्कार असंख्य वर्षों तक सुरक्षित रहे और उससे इस अवसर्पिणी काल में महान दानतीर्थ के प्रवर्तन का कितना बड़ा काम हो गया!

2. संस्कार निरर्थक नहीं, इसलिए हमें अपने जीवन को अच्छे

संस्कारों से सुसज्जित करना चाहिए।

3. प्रथम आहारदान का कार्य तो यद्यपि श्रेयांसकुमार व उनके ज्येष्ठ भ्राता राजा सोमप्रभ ने सपरिवार किया, किन्तु प्रसिद्धि मुख्य निमित्तक श्रेयांशकुमार की ही हुई।

4. असली अतिथि तो वही होता है, जिसके आने की तिथि निश्चित न हो, यथा मुनि ऋषभदेव तथा असली अनुद्दिष्ट आहार तो वही है, जो किसी व्यक्ति विशेष के निमित्त से न बनाया गया हो, यथा – गन्ने का रस।

6. छह माह का उपवास – जब अपने ध्येय में मन लगता है, तब अन्य सर्व विकल्प समाप्त हो जाते हैं; फिर उपवास आदि में क्या दम है ?

7. जब ऋषभ मुनि आहार हेतु निकले तब लोगों ने उन्हें अनेक प्रकार के उपहार भेंट करने का प्रयास किया, किन्तु नवधा भक्ति पूर्वक आहार नहीं।

'तथ्य' – 'हम जिन वस्तुओं का त्याग करते हैं, उन्हीं वस्तुओं की प्राप्ति परीक्षा लेने हेतु पग–पग पर वृद्धिंगत होते हुए होती है।'

8. जब होनहार न हो तथा कर्मोदय भी वैसा ही हो, तब चक्रवर्ती जैसे होनहार पुत्र भी काम में नहीं आते।

9. कर्मोदय किसी को भी नहीं छोड़ता। ऋषभदेव द्वारा एक समय में बाँधा गया भोगान्तराय कर्म ही उन्हें 7 माह, नौ दिन तक आहार मिलने में अवरोध पैदा करता रहा।

10. किसी विशिष्ट वस्तु की उपलब्धि तत्संबंधी लाभान्तराय कर्म के क्षयोपशम से होती है, मात्र बाह्य प्रयास से नहीं। यथा – आहार का लाभ।

11. आहारादि दान में विविध प्रकार के पुड़ी–पकवान का महत्त्व

नहीं होता, उसमें तो अंतरंग की भावना विशेष की मुख्यता रहती है। अत: आहार में शुद्ध गन्ने का रस भी पर्याप्त था।

12. योग्य पात्र को दिया गया दान उत्तम फलदायी होता है, क्योंकि जैसे सांप को दूध पिलाने से विष ही बनता है, किन्तु गाय को घास भी खिलाई जाये तो दूध ही मिलेगा।

13. सत्पात्र निमित्तक दानतीर्थ के प्रवर्तनकर्ता मात्र श्रेयांसकुमार ही नहीं, किन्तु मुनि ऋषभदेव भी उसमें अन्तर्निहित हैं, क्योंकि स्वयं को आवश्यकता न होने पर भी; मोक्षमार्ग स्वरूप मुनियों की निर्दोष चर्या निरंतर चलती रहे – ऐसा भाव प्रथम तो मुनि ऋषभदेव को ही आया था।

14. सुपात्र दान के फल में क्या नहीं मिलता? वज्रजंघ व श्रीमती के भव में ऋषभदेव व श्रेयांसकुमार ने जो उत्तमपात्रों को आहारदान दिया था, उसमें वे दोनों उत्तरकुरु भोगभूमि में जन्मे।

इसीतरह मात्र दान की अनुमोदना से उसी वन में स्थित सिंह (अनन्तवीर्य का जीव) बंदर (वीर का जीव), शूकर (अच्युत का जीव) तथा नेवला (वरवीर का जीव) – ये चारों ही अगले भव में भोगभूमि में गये तथा अगले प्रत्येक सात भवों में ऋषभदेव के जीव के साथ रहकर अंत में उन्हीं के पुत्र होकर मोक्ष भी गए।

15. भरतक्षेत्र में जब 18 कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष तक अखण्ड भोगभूमि चल रही थी, तभी अन्यक्षेत्र में विदेह की भोगभूमि, कर्मभूमि व स्वर्ग में ऋषभदेव व श्रेयांसकुमार के जीव का अविच्छिन्न साथ बना रहा।

साथ हो तो ऐसा कि जिसमें वे निरंतर जन्म तो लेते थे; किन्तु प्रत्येक जन्म में धर्म में वृद्धि होती रही। जैसे पहले दोनों ही मिथ्यादृष्टि, फिर दोनों साथ में सम्यग्दृष्टि, फिर एक इन्द्र तो दूसरा प्रतीन्द्र, एक चक्रवर्ती तो दूसरा उनका रत्न तथा अंत में एक तीर्थंकर तो दूसरा उनका गणधर।

16. अक्षय तृतीया के दिन गन्ने का रस पीना व सबको पिलाना महत्त्वपूर्ण नहीं है, किन्तु उस दिन हमें भी उत्तम पात्रों को आहारदान का अवसर प्राप्त हो – ऐसी भावना भानी चाहिए।

17. दान देने का उद्देश्य धर्मतीर्थ प्रवर्तन मात्र ही होना चाहिए, न कि मान बढ़ाई हेतु आहार में विविध मिष्टान्नों का प्रदर्शन।

18. यह पर्व अक्षय इसलिए भी है कि जिस दिन आहार दिया गया, उस दिन रसोई का भोजन अक्षीण (क्षय न होनेवाला) हो गया; अत: यह तिथि वैशाख तृतीया 'अक्षय तृतीया' हो गई।

19. किन्हीं-किन्हीं क्षेत्रों में अक्षय-तृतीया को 'अख्ती' अथवा 'अकती' शब्दों से पुकारा जाता है।

20. ज्यादातर आहारदान के समय आहारदाता के यहाँ देवों द्वारा पंचाश्चर्य होते हैं, जो कि श्रेयांसकुमार के निवास स्थान पर भी हुए।

वे पंचाश्चर्य निम्न हैं – **क.** रत्नवृष्टि, **ख.** पुष्पवृष्टि, **ग.** दुन्दुभिवाद्य का बजना, **घ.** शीतल और सुगन्धित मन्द-मन्द वायु का चलना तथा **च.** अहो दानम् इत्यादि प्रशंसा वाक्य। इससे आहारदान की महिमा स्वत: स्पष्ट हो जाती है।

इसप्रकार इन प्रामाणिक व यथार्थ समस्त तथ्यों को जानकर हम सही अर्थ में 'अक्षय-तृतीया' पर्व मनायें, इसी भावना के साथ विराम।

ooo

लेख के मुख्य बिन्दु – 1. ललितांगदेव व स्वयंप्रभादेवी के भव से दोनों का साथ अनवरत रहा। 2. वज्रजंघ राजा व श्रीमती रानी की पर्याय में दोनों ने मुनिराजों को आहारदान दिया। 3. भोगभूमि में आर्य व आर्या के भव में दोनों ने सम्यक्त्व प्राप्त किया। 4. अंतिम भव में श्रेयांसकुमार ने मुनि ऋषभदेव को आहार दिया। 5. उसी भव में ऋषभदेव तीर्थंकर व श्रेयांसकुमार उनके गणधर बने। 6. वर्तमान में दोनों सिद्धालय में विराजमान हैं।

श्रुतावतार की ज्ञापक 'श्रुतपंचमी'

श्रुत की स्थापना वाली, श्रुत के अवतार वाली, जन-जन के कल्याण की उद्घोषक पंचमी ही **श्रुतपंचमी** है।

वह श्रुत 18 महाभाषा तथा 700 लघुभाषा में अन्तर्निमग्न होकर उद्भूत होने वाला भगवान महावीर की दिव्यध्वनिरूप महासागर से मथकर चार ज्ञान के धारी गुरु गौतमादि गणधरों के ज्ञान में अनेकविध कल्लोलें करता हुआ विविध आचार्यों के मुखारबिन्द से मौखिक रूप से मुखरित होकर लगभग 683 वर्षों तक अविच्छिन्न धारा प्रवाहरूप से निरन्तरता को प्राप्त होता हुआ भव्योत्तम प्राणियों के सद्भाग्य के प्रसूनोदय स्वरूप धर्म धुरंधर धरसेनाचार्य के विकल्परूप ज्ञान में अवतरित होकर उनके धर्मशिष्यत्व को प्राप्त श्री पुष्पदन्त व भूतबलि आचार्यों की बुद्धि व विवेक क्षमता द्वारा संतप्त मानस को शीतलता प्रदान करने में समर्थ आनन्ददायी प्रथम श्रुतस्कंध षट्खण्डागम स्वरूप गागर में सिमट कर अपने में सागरत्व की पहचान कराता हुआ **ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी की तिथि को** तीरथ बनाकर जन मानस को त्यौहार की संज्ञा दे गया।

इस अवसर्पिणी काल के दुषमा-सुषमा नामक चतुर्थ काल के तीन वर्ष व साढ़े आठ माह अवशेष रह जाने पर भगवान महावीर स्वामी का निर्वाण हो गया, उसके बाद क्रमशः 12+12+38=62 वर्षों तक अनवरत श्री गौतमस्वामी, श्री सुधर्माचार्य (लोहाचार्य) व श्री जम्बूस्वामी - इन तीन अनुबद्ध केवलियों का युग रहा।

उनके निर्वाण के अनन्तर विष्णु (14 वर्ष), नन्दिमित्र (16 वर्ष), अपराजित (22 वर्ष), गोवर्धन (19 वर्ष) व भद्रबाहु-प्रथम (29 वर्ष) - इन पाँच श्रुतकेवलियों ने अगले 100 वर्षों तक उस श्रुत की धारा को अविच्छिन्न रखा।

तदनन्तर अगले 183 वर्षों तक विशाखाचार्य आदि ग्यारह, 10

पूर्वधारियों ने श्रुत रक्षा की; फिर 11 अंगधारियों का युग 220 वर्ष अथवा मतान्तर से 123 वर्ष रहा; उसके पश्चात् 10, 9, 8 अंगधारियों अथवा मतान्तर से मात्र एक आचारांगधारी का युग 97 वर्ष तक रहा।

उसके बाद एकांगधारी (मतान्तर से अंग पूर्व के एकदेश ज्ञाता) आचार्यों का युग 118 वर्ष रहा, जिनमें वीर निर्वाण संवत् 565 अर्हद्बलि (28 वर्ष), वी.नि. 593 माघनन्दि (21 वर्ष), वी.नि. 614 धरसेनाचार्य (19 वर्ष), वी.नि. 633 पुष्पदन्त (30 वर्ष), वी.नि. 663 भूतबलि (20 वर्ष)। इस तरह कुल 62 वर्ष+100 वर्ष+183 वर्ष+123 वर्ष+97 वर्ष+118 वर्ष = 683 वर्ष तक मौखिक रूप से श्रुत का प्रवाह चलता रहा।

किन्तु ये क्या! कलिकाल कवलित बुद्धि व हीन संहनन वाले मानवों को देखकर अन्तर में निर्भय; किन्तु श्रुत की अविच्छिन्न धारा के विच्छेद का भय सौराष्ट्र देश के गिरिनगर (गिरनार) की चन्द्रगुफा में रहने वाले अष्टांग निमित्त के पारगामी, षट्खण्डागम के ज्ञाता, प्रवचनवत्सल व धीर-गंभीर धरसेनाचार्य के मस्तिष्क को आंदोलित करने लगा; तदर्थ उन्होंने किसी धर्मोत्सव के निमित्त से **महिमा नाम की नगरी** में सम्मिलित हुए दक्षिणापथ के आचार्यों के पास एक पत्र लिखते हुए उसमें षट्खण्डागम के अध्ययन हेतु योग्य शिष्य को भेजने की इच्छा व्यक्त की।

इस तरह के उत्तम समाचार को जानकर दक्षिण देश के आचार्यवर अर्हद्वलि ने शास्त्र के अर्थ को ग्रहण करने में समर्थ देश, कुल, शील व जाति से उत्तम; समस्त कलाओं में पारंगत दो आचार्यों को धरसेनाचार्य के पास भेज दिया।

जिस दिन वे वहाँ पहुँचने वाले थे, उस दिन आचार्य धरसेन ने रात्रि के पिछले भाग में स्वप्न में तीन प्रदक्षिणा देकर अपने पाँव में गिरते हुए उत्तम लक्षणों से संयुक्त दो धवल वर्ण वाले बैलों को देखा - ऐसा देख उनके मुख से सहसा निकल पड़ा **'जयउ सुयदेवदा' (जयतु श्रुतदेवता)**। उसी दिन वे दोनों वहाँ पहुँचे।

वहाँ पहुँच कर उन दोनों ने धरसेनाचार्य की तीन प्रदक्षिणाएँ दीं और उनके चरणों में बैठकर सविनय नमस्कार किया। आचार्य ने परीक्षा लेने की दृष्टि से एक को अधिकाक्षरी और एक को हीनाक्षरी मंत्र विद्या देकर उन्हें षष्ठोपवास से सिद्ध करने को कहा।

गुरु की आज्ञानुसार उन्होंने वैसा ही किया और विद्याएँ सिद्ध हुईं; किन्तु वहाँ एक बड़े-बड़े दाँतों वाली और दूसरी कानी (एक आँख वाली) देवी प्रकट हुई। उन्हें देखकर विवेकी मुनियों ने जान लिया कि मंत्रों में कुछ त्रुटि है - ऐसा विचार कर मंत्रों को सुधार कर पुनः साधना की, जिससे देवियाँ अपने स्वाभाविक सौम्यरूप में प्रकट हुईं।

दोनों मुनियों ने गुरु के पास जाकर इस घटना का उल्लेख किया। उनकी इस कुशलता से गुरु ने उन्हें योग्य पात्र समझ कर सिद्धान्त ग्रन्थ का ज्ञान दिया। यह श्रुताभ्यास **आषाढ़ शुक्ला एकादशी के दिन पूर्वाह्न में समाप्त हुआ।**

उसी समय भूत आदि व्यंतर देवों ने पुष्पाहारों, शंख, तूर्य और वादित्रादि ध्वनि के साथ उल्लेखानुसार पूर्वनाम आचार्य नरवाहन की पूजा की, इसी से धरसेनाचार्य ने उनका नाम भूतबलि रख दिया तथा दूसरे आचार्य पूर्व नाम सुबुद्धि की देवों द्वारा अस्त-व्यस्त दंत-पंक्ति सुधार दी गई, जिससे उनका नाम पुष्पदन्त रखा।

शिक्षा के उपरांत दोनों आचार्य वहाँ से निकल कर अंकलेश्वर (जिला भरूच, गुजरात) पहुँच कर वहाँ चातुर्मास किया। उन्हीं दिनों दोनों ने आपस में बहुत गंभीर चर्चा करके सुने हुए उपदेश को व्यवस्थित किया।

चातुर्मास पश्चात् आचार्य पुष्पदन्त तो वनवास नगर (उत्तर कर्नाटक का ही प्राचीन नाम) तथा आचार्य भूतबलि द्रविड देश की मथुरा नगरी में ठहर गए।

दोनों आचार्यों ने अपने-अपने स्थानों पर षट्खण्डागम लेखन प्रारंभ किया, जिसमें ज्येष्ठ आचार्य पुष्पदन्त ने छह खण्डों में प्रथम जीवट्ठाण का कुछ अंश लिखा और उसे अपने गृहस्थ अवस्था के भांजे; किन्तु तात्कालिक उनके शिष्य मुनि जिनपालित के द्वारा भूतबली आचार्य के पास भेजा तथा यह भी संदेश दिया कि पुष्पदन्ताचार्य की आयु अल्प है।

उक्त समाचार जानकर भूतबली आचार्य ने अवशेष प्रथम खण्ड तथा अन्य पाँच खण्डों की रचना करके पुष्पदन्ताचार्य के पास भेजा। कार्य की सम्पूर्णता को देख दोनों आचार्य तथा अन्य सभी प्रसन्न हुए और सभी ने इस युग के प्रसिद्ध लिपिबद्ध प्रथम श्रुतस्कंधरूप षट्खण्डागम की पूजा की।

यह शुभ दिन ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी का था, अतः वह श्रुत लेखन की, श्रुत स्थापना की, श्रुत के अवतार की पंचमी 'श्रुत पंचमी' हो गई।

षट्खण्डागम का उद्गम स्थल - हमने पहले आचार्य परम्परा से किस तरह श्रुत आगे बढ़ा, वह देखा; अब हम यह देखने का प्रयास करते हैं कि अर्थकर्ता तीर्थंकर की दिव्यध्वनि से निकले उस श्रुत को अन्तर्मुहूर्त मात्र में गूँथने वाले रचनाकार/ग्रन्थकार गणधरों के द्वादशांगरूप कौन से अंग के किस अंश से इस षट्खण्डागम का निर्माण हुआ?

सम्पूर्ण जिनवाणी 12 अंगों में गूँथी गई है। उसमें 5वाँ अंग व्याख्याप्रज्ञप्ति तथा 12वाँ दृष्टिवाद अंग है, इनके कुछ अंशों के साररूप षट्खण्डागम का निर्माण हुआ।

यदि सूक्ष्मता में जाकर देखें तो 5वें अंग से षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड जीवट्ठाण (जीवस्थान) की 9 चूलिकाओं में से एक, नौवीं गति-आगति चूलिका की रचना हुई।

इसीतरह 12वें दृष्टिवाद अंग के 1. परिकर्म, 2. सूत्र, 3. प्रथमानुयोग,

4. पूर्वगत तथा 5. चूलिका - इन पाँच भेदों में से प्रथम 'परिकर्म' भेद से प्रथम खण्ड जीवट्ठाण की आठवीं सम्यक्त्वोत्पत्ति चूलिका निर्मित हुई।

इसके अतिरिक्त 12वें अंग के चतुर्थ भेद पूर्वगत के 14 भेद हैं, उनमें दूसरा भेद अग्रायणीय पूर्व है, जिसके 14 वस्तु अधिकार हैं, उनमें 5वें भेद चयन-लब्धिनामक वस्तु अधिकार के भी 20 प्राभृत अधिकार हैं, जिनमें चौथा कर्मप्रकृति प्राभृत अधिकार है। यह अति विशाल है और यही षट्खण्डागम के अधिकांश विषय का उद्गमस्थल है।

यदि और सूक्ष्मता में जाएं तो उस चौथे कर्म प्रकृति प्राभृत अधिकार में भी 24 अनुयोगद्वार हैं। उनमें से प्रारंभिक 6 - (1. कृति, 2. वेदना, 3. स्पर्श, 4. कर्म, 5. प्रकृति व 6. बंधन) अनुयोग द्वारों से ही षट्खण्डागम के प्रथम खण्ड के कुछ अंश के साथ अवशेष 5 खण्डों (खुद्दाबंध, बंधसामित्त, वेयणाखण्ड, वग्गणाखण्ड व महाबंध) की उत्पत्ति हुई।

उपर्युक्त प्रसंग से समझने और ग्रहण करने योग्य कुछ खास तथ्य -

1. महत्त्वशाली आचार्य कौन ? - श्रुत पंचमी के सम्पूर्ण प्रसंग में मुख्यता से तीन आचार्यों का उल्लेख हुआ है - 1. धरसेनाचार्य, 2. पुष्पदन्ताचार्य व 3. आचार्य भूतबलि। इनमें सापेक्षिक तीनों का ही महत्त्व विशेष है। यदि धरसेनाचार्य ने शिष्यों को ज्ञान न दिया होता तो ग्रन्थ निर्माण कैसे होता? उसी तरह यदि अन्य दोनों आचार्यों ने उसे लिपिबद्ध न किया होता तो आज क्या होता? अत: तीनों का ही बड़ा महत्त्व है।

2. तिथि कौन-सी महान ? - इसमें दो खास तिथियों का उल्लेख हुआ है, जिनमें एक अध्ययन-अध्यापन सम्पूर्ण करने की तिथि **आषाढ़ शुक्ला एकादशी तथा दूसरी ग्रन्थ निर्माण की ज्येष्ठ शुक्ला पंचमी तिथि** - ये दोनों ही अपेक्षावश महान हैं।

3. ज्ञान बड़ा या विवेक - यद्यपि बड़े तो दोनों ही हैं; किन्तु इस प्रसंग में विवेक को बड़ा मानना चाहिए; क्योंकि जब धरसेनाचार्य द्वारा उन दोनों आचार्यों की परीक्षा ली गई, उस समय मात्र ज्ञान के प्रयोग से सच्ची सिद्धि न हुई; किन्तु जब स्वविवेक से मंत्रों को ठीक करके पुन: प्रयास किया गया, तभी वास्तविक सफलता मिली।

4. आचार्य ने गृहस्थों को क्यों नहीं पढ़ाया ? - इसका मुख्य कारण है विशुद्धि की कमी अर्थात् गृहस्थ कितने भी चतुर हों; किन्तु मुनियों जैसी विशुद्धता उनके नहीं पायी जाती और इतना विशाल ज्ञान गृहस्थी में उलझे श्रावकों को संभव कैसे हो सकता है ?

5. यह पर्व इतना महान क्यों ? - इस काल में अब केवलियों का तो विरह ही है तथा वीतरागी साधक मुनि भी विरले ही हैं। ऐसे समय में यदि लिपिबद्ध जिनवाणी उपलब्ध न होती तो मानवों में भी पशुता ही सवार होती तथा उनकी विशुद्धता हेतु सद्निमित्त के अभाव में मोक्षमार्ग भी अवरुद्ध हो जाता; अत: यह पर्व महान है।

6. आचार्यों की कष्ट साधना - हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जिस समय और जिन परिस्थितियों में जिनवाणी लिखी गई, उस समय वर्तमानवत् कोई आधुनिक साधन उपलब्ध न थे। मुनिराजों ने किस तरह ताड़पत्रों पर एक-एक अक्षर को लिखा होगा, यह तो प्रयोग करके ही अनुभव किया जा सकता है।

7. ग्रन्थ लेखन किसने कितना किया ? षट्खण्डागम के छह खण्ड/भेद हैं - 1. जीवट्ठाण, 2. खुद्दाबंध, 3. बंधसामित्त, 4. वेयणा-खण्ड, 5. वग्गणाखण्ड तथा 6. महाबंध।

इनमें प्रथम जीवट्ठाण (जीवस्थान) के आठ अनुयोगद्वार हैं - 1. संतपरूवणा (सत्प्ररूपणा), 2. द्रव्यप्रमाणानुगम (संख्या प्ररूपणा), 3. क्षेत्रानुगम, 4. स्पर्शानुगम, 5. कालानुगम, 6. अन्तरानुगम, 7. भावानुगम और 8. अल्पबहुत्वानुगम।

इनमें जीवस्थान के प्रथम अनुयोगद्वार संतपरूवणा (सत्प्ररूपणा) में विद्यमान 177 सूत्रों की रचना आचार्य पुष्पदन्त ने की है।

इसके अतिरिक्त शेष दूसरे अनुयोगद्वार **द्रव्यप्रमाणानुगम से लेकर आठवें अनुयोगद्वार तक तथा अन्य खुद्दाबंध आदि पाँच खण्डों की रचना आचार्य भूतबली ने की है।**

8. जिनागम की विशालता – वास्तव में जिनागम अगाध है। जब इतने महान धर्मधुरंधर आचार्यों को द्वादशांग का इतना अल्प ज्ञान अंशरूप में था तो सम्पूर्ण जिनागम कितना महान व विशाल होगा – इसकी तो हम कल्पना भी नहीं कर सकते।

9. यह श्रुतपंचमी पर्व कैसे मनायें ? – इस महान पावन पर्व को मनाने की वास्तविक सार्थकता तो इसी में है कि हम अपने कल्याण हेतु अति विशुद्धता के साथ इन पावन ग्रन्थों का स्वाध्याय करें, जो पढ़ा है उसका चिंतन करें, समझ में न आने पर योग्यतम अध्येताओं का अनुसरण करें, उनसे विनय पूर्वक पूँछें, पुनः चिंतन करें। जिनवाणी की बहुत विनय करें, नमस्कार–स्तुति–वंदन आदि करें। जिनवाणी को साफ करके सुरक्षित करें। अध्ययन–अध्यापन के समय अन्तर्बाह्य विशुद्धता का ध्यान रखें।

10. इस पर्व से ग्रहण योग्य वास्तविक शिक्षा – इस पर्व की वास्तविकता जानकर श्रुत में लिखित भेदविज्ञान की, सम्यग्दर्शन आदि रूप मोक्षमार्ग की कला जानकर स्वयं का कल्याण करने योग्य है।

इस तरह इस महान पर्व के वास्तविक तथ्य समझ कर श्रुतपंचमी मनाने का संकल्प करके भावश्रुतस्वरूप निजस्वभाव का वेदन करें – ऐसी पवित्र भावना।

○○○

तीर्थोत्पत्ति दिवस ही 'वीरशासन जयन्ती'

इस युग के अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी की प्रथम दिव्यध्वनि **श्रावण कृष्णा प्रतिपदा (एकम्)** को खिरते ही वह तिथि धन्य हो गई। वह दिन जन-जन के कल्याण में निमित्तभूत **तीर्थ की उत्पत्ति का दिवस** बन गया और **भगवान महावीर के शासन के जन्म** का दिन होने से वह तिथि **वीर शासन जयन्ती** के नाम से संपूर्ण संसार में प्रसिद्ध हो गई।

यह वही तिथि है, जिसमें तीनों लोक के संसार दु:खों से संतप्त, स्वयं के संताप मिटाने व चन्दनसम शीतलता पाने के इच्छुक विविध प्रकार के प्राणी, जिनमें अनेकविध मनुष्य-तिर्यंच व असंख्य देवी-देवता, तीन लोक के अधिपति त्रिकालदर्शी तीर्थेश तीर्थंकर भगवान महावीर को **वैशाख शुक्ला दशमी तिथि** के दिन केवलज्ञान होने पर उनकी प्रथम अमृतमयी देशना का पान करने हेतु अनेक दिनों से अनवरत टकटकी लगाकर इंतजार करते रहे।

किन्तु ये क्या! भव्य जीवों के सद्भाग्योदय व वीरप्रभु की वाणी के योग के बिना वह जनकल्याणी अमृतमयी वाणी खिर न सकी। यद्यपि नियम तो यह है कि तीर्थंकर को केवलज्ञान होने पर तत्काल ही पतित-पावन दिव्यध्वनि खिरती है; किन्तु काललब्धि, भवितव्यता व निमित्तादि के अयोग से इसतरह के अपवाद बनना भी कोई महान आश्चर्य की बात नहीं है।

दिन गिनते-गिनते 65 हो गये। इन दिनों कितने लोग सभा मण्डप में आये और कितने ही चले भी गए; किन्तु धीरता को धारण करने वाले अनेक लोग प्रतीक्षा करते रहे।

इतना ही नहीं, 65 दिनों तक समवसरण भी एक स्थान पर नहीं रह सका और वीरप्रभु विहार करते-करते राजगृह के निकट विपुलाचल पर पहुँच गये। वहाँ भी इन्द्र की आज्ञा से समवसरण की रचना की गई।

सभा में असंख्य श्रोता उपस्थित थे। इन्द्र की चिंता बढ़ती गई और तब उन्होंने अवधिज्ञान से ज्ञात किया कि सम्यक् और यथार्थज्ञानी गणधर के अभाव में ज्ञानगंगा अवरुद्ध है, उसे अवतरित करने के लिए एक भागीरथ की आवश्यकता है। उनके ज्ञान में आया कि एक गणधर ही तीर्थंकरों की अर्थरूप वाणी का व्याख्याता होता है तथा वह इनके ही पादमूल में दीक्षित होता है।

यद्यपि इन्द्र को गणधर की व्यवस्था करना ज्यादा कठिन कार्य नहीं है, तभी तो उन्होंने अवधिज्ञान से जान लिया कि मध्यमा पावा में मगध के एक प्रतिष्ठित विद्वान ब्राह्मण सोमिल ने वैदिक विचारधारा को जागरूक करने हेतु एक महायज्ञ का आयोजन किया है, जिसका नेतृत्व मगध के ही एक प्रसिद्ध विद्वान एवं प्रकाण्ड तर्कशास्त्री इन्द्रभूति गौतम कर रहे हैं और वे ही वीरप्रभु के प्रथम गणधर बनने की योग्यता रखते हैं।

प्राप्त जानकारी के अनुसार इन्द्रभूति मगधदेश के गोब्बर ग्राम में गौतम गोत्रीय माता पृथ्वी व पिता वसुभूति के यहाँ जन्म लेने वाले तथा अपर उल्लेखानुसार माता स्थंडिला व पिता शांडिल्य के पुत्ररूप में जन्मे वेद, उपनिषद्, दर्शन, न्याय, तर्क, ज्योतिष व आयुर्वेदादि के मर्मज्ञ अपने 500 शिष्यों के साथ अपनी अगाध विद्वत्ता का परचम लहरा रहे थे।

इस तरह सबकुछ ज्ञात करके इन्द्र एक वटुक (ब्रह्मचारी) का वेश बनाकर प्रकाण्डवेत्ता इन्द्रभूति के समक्ष पहुँच कर चातुर्यता से कहने लगे – 'गुरुवर ! आपकी विद्वत्ता देशभर में व्याप्त है, आपके अपरिमित ज्ञान की चर्चा सर्वत्र गुंजायमान हो रही है – ऐसा जानकर मैं अपनी एक गुत्थी को सुलझाने हेतु आपके समक्ष आया हूँ, मुझे आशा और विश्वास है कि मैं यहाँ से निराश नहीं लौटूँगा।

इन्द्रभूति गौतम ब्राह्मण, वटुक रूपधारी इन्द्र के विनीत भाव से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अनुभव किया कि आगन्तुक वृद्ध में ज्ञान की पिपासा

है। वह नम्र व अनुशासित भी है। अतः उसकी जिज्ञासा पूर्ण करना मेरा कर्तव्य भी है।

इन्द्र ने नम्रतापूर्वक कहा –

पंचेव अत्थिकाया छज्जीव-णिकाया महव्वया पंच।
अट्ठय पवयणमादा सहेउओ बंध-मोक्खो य।।

– (ष.ख. ध.पु.9, पृ. 129 में उद्धृत)

अथवा इस तरह का इसी के समकक्ष संस्कृत में एक पद्य उपलब्ध होता है –

''त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं नवपदसहितं जीवषट्काय-लेश्या।
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्रभेदाः।।
इत्येतन्मोक्षमूलं त्रिभुवनमहितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्दधाति स्पृशति च मतिमान् यः स वै शुद्धदृष्टिः।।''

– (तत्त्वार्थसूत्र, श्रुतभक्ति)

यह सुनकर इन्द्रभूति बोला – ''मैं इस गाथा का अर्थ तभी बतलाऊँगा, जब तुम इसका अर्थ ज्ञात हो जाने पर मेरे शिष्य बनने की शर्त स्वीकार करो।''

इन्द्रभूति बहुत समय तक गाथा का अर्थ सोचता रहा, पर उसकी समझ में कुछ नहीं आया। अतएव वह इन्द्र से कहने लगा – ''तुमने यह गाथा कहाँ से सीखी है ? किस ग्रन्थ में यह गाथा आयी है ?''

ब्राह्मणवेशधारी इन्द्र बोला – ''मैंने यह गाथा अपने गुरु तीर्थंकर महावीर से सीखी है, पर वे अभी कई दिनों से मौनावलम्बन लिये हुए हैं। इसी कारण इस गाथा का अर्थ मैं उनसे नहीं जान पाया; अतः आपके समक्ष उपस्थित हुआ हूँ।

इन्द्रभूति समझ न सके कि पंचास्तिकाय क्या हैं ? छह जीवनिकाय कौन से हैं ? षट्काय व लेश्याएँ क्या वस्तु हैं ? इन्द्रभूति को जीव के

अस्तित्व के संबंध में स्वयं शंका थी। अत: वे और भी असमंजस में पड़कर कहने लगे – ''चलो तुम्हारे गुरु के समक्ष ही इस गाथा का अर्थ बतलाऊँगा। मैं अपनी विद्वत्ता का प्रभाव तुम्हारे गुरु पर ही प्रकट करना चाहता हूँ।''

इन्द्रभूति गौतम की उक्त बात को सुनकर इन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और मन में सोचने लगा – ''मेरा कार्य अब सम्पन्न हो गया। तीर्थंकर महावीर के समवसरण में पहुँचते ही इनका अहंकार विगलित हो जायेगा और शंकाओं का समाधान स्वयं प्राप्त हो जायेगा।'' तदनन्तर इन्द्र और इन्द्रभूति दोनों वीरप्रभु की ओर चल पड़े।

जब इन्द्रभूति गौतम ने शास्त्रार्थ करने की आकांक्षा से तीर्थंकर महावीर के समवसरण में प्रवेश किया, तब मानस्तंभ के दर्शनमात्र से ही उनके मन का सारा कालुष्य धुल गया। स्तंभ देखकर इन्द्रभूति स्तब्ध रह गया और ज्ञान का समस्त अहंकार पिघल गया। इन्द्रभूति गौतम के लिए मानस्तंभ प्रकाशस्तंभ बन गया। उनके हृदय का तिमिर छिन्न हो गया और उन्हें क्षायोपशमिक ज्ञान की सीमा ज्ञात हो गयी। वे मन ही मन सोचने लगे कि मेरा ज्ञान कितना बौना है। मैं तो महावीर के ज्ञान की एक किरण छूने में भी असमर्थ हूँ। आज मेरा अभिमानी मन विनम्रता से अभिभूत हो गया है।

इस तरह के विशुद्ध परिणामों से उनका मिथ्यात्व गल गया और उन्हें सम्यग्दर्शन प्राप्त हो गया। तदनन्तर उन्होंने दिगम्बरी दीक्षा ग्रहण कर ली और फिर वे चार ज्ञान के धारी हो गये। चारों ओर उनकी जय-जयकार होने लगी।

यह पावन दिन **आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा** का था, इसी दिन इन्द्रभूति ने (50 वर्ष की आयु में) दीक्षा धारण की थी, इस कारण यह दिन गुरु-शिष्य की परम्परा का दिन अथवा भगवान महावीर के गुरु बनने का दिन होने से वह तिथि भी गुरु-शिष्य के नाम से जगत में प्रसिद्ध हो गयी।

तदनन्तर अगले ही दिन **श्रावण कृष्णा-प्रतिपदा के ब्रह्ममुहूर्त में वीरप्रभु की दिव्यध्वनि आरम्भ हुई** और यही दिन **धर्मतीर्थोत्पत्ति दिवस नाम** से तथा साक्षात् महावीर के शासन के जन्म से **वीरशासन जयन्ती के नाम से** प्रसिद्धि को प्राप्त हुआ।

जैनागमानुसार (तिलोयपण्णत्ती 1/गाथा 68-69) अवसर्पिणी के चतुर्थ काल के अंतिम भाग में 33 वर्ष 8 माह व 15 दिन शेष रहने पर वर्ष के श्रावण नामक प्रथम महीने में कृष्णपक्ष की प्रतिपदा के दिन अभिजित नक्षत्र के उदित रहने पर धर्मतीर्थ की उत्पत्ति हुई।

और क्या गजब संयोग है कि यही तिथि युग के आरंभ की तिथि है, उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी रूप कालों के शुभारंभ की तिथि है तथा नवीन वर्ष के प्रारंभ की तिथि है। (ति.प. 1/गाथा 70) तथा इसके एक दिन पूर्व की तिथि आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा युग की समाप्ति की तिथि है, इन्द्रभूति गौतम के दीक्षा दिवस की तिथि है।

इस तरह श्रावण कृष्णा प्रतिपदा का महान दिन अनेकविध तिथियों के संयोगरूप है। उस दिन वीरप्रभु की देशना को प्राप्त करके मात्र इन्द्रभूति का ही उद्धार नहीं हुआ, किन्तु उसके सभी 500 शिष्य भी दीक्षित हुए। इन्द्रभूति के दोनों लघु भ्राता अग्निभूति (46 वर्ष की आयु में) तथा वायुभूति (42 वर्ष की आयु में) भी अपने-अपने 500-500 शिष्यों के साथ दिगम्बर मुद्रा धारी हुए और ये दोनों भी क्रमशः द्वितीय व तृतीय गणधर पद को प्राप्त हुए। इनके अतिरिक्त भी अनेक जीव मुनि, अनेक व्रती श्रावक व अगणित अविरत सम्यक्त्वी हुए।

किन्तु क्या गजब योग्यता/भवितव्यता की बलिहारी है कि अनेक लोग समवसरण में आकर भी देशना के पहले ही वहाँ से चले गए तथा कुछ वहाँ उपस्थित रहकर भी उस महान कल्याणी वाणी का लाभ न उठा सके।

भावसंग्रह के अनुसार श्री पार्श्वनाथ परंपरा के मंखलि गोशालक

नाम के मुनि; जो अष्टांग निमित्तों के ज्ञाता व 11 अंगों के धारी थे। वे गणधर बनने के इच्छुक थे; किन्तु इन्द्रभूति को गणधर पद मिलने पर रुष्ट होकर समवसरण छोड़कर चले गए।

इससे यह भी सिद्ध होता है कि जिनके काललब्धि व होनहार होती है, उन्हीं जीवों को इस तरह के निमित्त काम करते हैं।

ऐसा सम्पूर्ण विवरण जानकर हमारा कर्तव्य तो यही है कि हम उस पावन दिव्यध्वनि के दिन को याद करते हुए तथा परंपरा से आई श्री वीरप्रभु की वाणी का पूर्णरूप से लाभ लेकर अपना हित साधें, यही भावना है।

इस सम्पूर्ण प्रकरण से समझने और ग्रहण करने योग्य कुछ खास तथ्य -

1. 66 दिन तक दिव्यध्वनि न खिरने का कारण - कसायपाहुड़, जयधवला पु.1, पृ. 76 के अनुसार - काललब्धि के अभाव में इन्द्र भी गणधर की व्यवस्था न कर सका अथवा कहें कि निमित्त-उपादान दोनों में से किसी एक की कमी इसमें कारण होती है।

2. उपकार दिवस - वास्तव में देखा जाये तो अनेक पर्व-त्यौहारों में कोई घटना प्रधान तो कोई व्यक्तिगत चरमोत्कर्ष से संबंधित होते हैं, किन्तु यह पर्व तो जन-जन के कल्याण का तथा संसार दु:ख से तारने वाला सच्चा उपकार दिवस है।

3. द्वादशांग रचना दिवस - जिस दिन वीर प्रभु की दिव्यध्वनि खिरी, उसी तिथि में गौतम गणधर ने द्वादशांग की रचना कर दी।

4. नववर्ष व युग का शुभारंभ - जिस दिन दिव्यध्वनि खिरी, उसे ही धर्म की शुरूआत कहेंगे, धर्म की शुरूआत ही सुख की शुरूआत है; आनंददायी जीवन है; अत: वही श्रावण कृष्ण प्रतिपदा तिथि जैनागम के अनुसार नववर्ष के व युग के प्रारंभ की तिथि मानी गयी है।

5. कोई भी दिवस या घटना, वह महान होती है; जिससे अपना और अन्य सभी का हित हो, अत: वीरशासन जयन्ती इस बात को सार्थक करती हुई होने से महान है।

6. 'तीर्थोत्पत्ति दिवस' का अर्थ यह नहीं समझना चाहिए कि इससे पहले धर्मतीर्थ था ही नहीं, इससे पहले भी 23 तीर्थंकरों द्वारा दिव्यदेशना हुई है और उससे पूर्व भी अनादि से यह कार्य चलता चला आ रहा है। यह दिवस तो अंतिम तीर्थंकर से चल पड़ा, जिसका लाभ हम सभी को मिल रहा है।

7. जीवन परिवर्तन दिवस – वीरशासन जयन्ती के एक दिन पूर्व ही आषाढ़ शुक्ला पूर्णिमा के दिन इन्द्रभूति का पूरा जीवन ही बदल गया, सम्यग्दर्शन, दीक्षा व गणधर पद की प्राप्ति, सब एक ही दिन हो गई।

8. गुरु महिमा दिवस – आषाढ़ शुक्ल पूर्णिमा के दिन इन्द्रभूति के दीक्षा लेते ही/उनके शिष्य बनते ही वीर प्रभु गुरु बन गए, अत: वह तिथि गुरु महिमा तिथि नाम से प्रसिद्ध हुई।

गुरु महिमा बताने वाला यह छन्द प्रसिद्ध है –

'अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।'

अर्थात् ज्ञानरूपी अंजन की सलाई, जिसने अज्ञानरूपी अंधकार से ग्रस्त अंधे पुरुष की आँखें खोल दी हैं – ऐसे श्रीगुरु को मेरा नमस्कार हो!

9. मान-स्तंभ महिमा – 'देखत मान गले मानी का मानस्तंभ सार्थक नाम' इसके अनुसार और इन्द्रभूति की प्रायोगिक घटना के अनुसार मान-स्तंभ का महत्त्व सहज ही महंतता को प्राप्त होता है।

10. शासन किसका ? वास्तव में देखा जाए तो जब तक अगले तीर्थंकर की दिव्यध्वनि नहीं खिरती तब तक पिछले जिस तीर्थंकर की दिव्यध्वनि खिरी, शासन उसका ही वर्तता है। वीरप्रभु की दिव्यध्वनि के

पूर्व तक श्री पार्श्वनाथ भगवान का शासन था, अब श्री महावीर प्रभु का शासन प्रवर्त रहा है। तब फिर ये यक्ष-यक्षिणी के शासन की चर्चा कहाँ से आ गई ? वह बिल्कुल ठीक नहीं।

11. भवि भागन वच जोगे वशाय - भव्य जीवों के भाग्य से और वीरप्रभु के वचन योग से दिव्यध्वनि खिरती है - ऐसा जानकर जीवों को अपने भाग्य का निर्माण करना चाहिए, जो वे स्वयं कर सकते हैं।

12. कहते हैं गणधर की उपस्थिति होने पर ही वाणी खिरी, उसके पहले गणधर के अभाव में केवलज्ञान होने पर भी 66 दिनों तक ऐसा नहीं हुआ। यह तो मात्र निमित्त का कथन जानना चाहिए। वास्तव में तो भव्यजीवों की उस समय उपादानगत पात्रता नहीं थी और वाणी खिरने का योग भी नहीं हुआ। जब काल आया तो वाणी खिरी, लोगों ने सुनी और निमित्त भी वहीं आकर उपस्थित हो गए।

13. इस दिवस को सबसे महान कहने से अन्य धर्म पर्वों को हीन कहा - ऐसा नहीं समझना, किन्तु उपकार और कृतज्ञता को मुख्य करके ही इसे सर्वश्रेष्ठ कहा।

14. इस पर्व को हम तीर्थोत्पत्ति दिवस, धर्मोत्पत्ति दिवस, वीरशासन जन्म दिवस, जन-जन का कल्याण दिवस आदि नामों से अभिहित कर सकते हैं।

15. वीरशासन जयन्ती कैसे मनाएँ ? - इस दिन हमें भगवान महावीर स्वामी द्वारा बताए गए वस्तुतत्त्व को समझ कर, उसे जीवन में उतार कर, उनके जैसे बनने का संकल्प व तदनुरूप परिणमन करना चाहिए।

इसप्रकार यह वीरशासन जयन्ती पर्व कई अर्थों में अत्यन्त महान है। ऐसा जानकर हम स्वयं धर्म से प्रेरित हों व अन्य पात्र जीवों को इसकी प्रेरणा देकर अपना और जगत का हित साधना चाहिए। तभी सच्चे अर्थों में वीरशासन जयन्ती पर्व मनाना सार्थक होगा। ○○○

नंदीश्वरद्वीप में 'अष्टाह्निका पर्व'

परिणामों की विशुद्धि व रत्नत्रय की प्राप्ति में निमित्तभूत अष्टाह्निका, जो कि 'अष्ट' (आठ)+'अह्नि' (दिन) शब्दों से मिलकर निरन्तर 8 दिन तक मनाये जाने वाले शाश्वत पर्व के रूप में प्रसिद्ध है।

यह पर्व वर्ष में **कार्तिक शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक, फाल्गुन शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा तक तथा आषाढ़ शुक्ला अष्टमी से पूर्णिमा पर्यन्त तीन बार मनाया जाता है।**

इस पर्व की प्रसिद्धि मनुष्यों द्वारा मनुष्यक्षेत्र में मात्र अपने-अपने स्थान पर मनाये जाने से नहीं, किन्तु चतुर्निकाय के देवों द्वारा मध्यलोक में मनुष्यलोक (ढाईद्वीप) से भी सुदूर असंख्यातद्वीप समुद्रों में से आठवें द्वीप नंदीश्वर में बड़े ही धूमधाम से मनाये जाने से है।

वलयाकार (चूड़ी के आकार) वाले व **एक सौ तिरेसठ करोड़ चौरासी लाख योजन** प्रमाण विस्तारवाले इस **नन्दीश्वर द्वीप** में चारों ओर बीचों-बीच अंजनगिरि नामक एक-एक पर्वत है। वहीं प्रत्येक अंजनगिरि के चारों ओर निर्मल जल से परिपूर्ण एक-एक दिशा में एक-एक - इसप्रकार कुल 4×4=16 बावड़ियाँ हैं।

इन 16 बावड़ियों में से प्रत्येक के मध्य में एक-एक दधिमुख नामक पर्वत व बावड़ियों के दोनों कोनों पर एक-एक रतिकर नामक पर्वत है; इसप्रकार कुल 4 अंजनगिरि+16 दधिमुख+32 रतिकर = 52 पर्वत हैं। ये सभी ढोल के समान गोल तथा ऊपर से नीचे तक समान व्यासवाले हैं।

वहाँ प्रत्येक पर्वत पर एक-एक अकृत्रिम जिनालय होने से कुल 52 जिनालय हो जाते हैं। इनमें प्रत्येक जिनालय में 500 धनुष ऊँची पद्मासन अरहंत अवस्था वाली 108-108 अकृत्रिम प्रतिमाएँ विराजमान हैं।

उपर्युक्त सभी प्रतिमाएँ वीतराग छवि युक्त, मनोहारी तथा सम्यग्दर्शनादि में निमित्तभूत होती हैं।

उन प्रतिमाओं की विशेषताएँ कविवर द्यानतरायजी ने नंदीश्वरद्वीप पूजन की जयमाला में कही हैं, जिनका सार इसप्रकार है – वे प्रतिमाएँ रत्नमयी हैं, उनके अंगुलियों के नाखून और मुँह का रंग लाल; नेत्र का रंग काला और सफेद तथा भौंह व सिर के बाल काले हैं। वे प्रतिमाएँ देखने में ऐसी लगती हैं, मानो हँसती हुईं, कुछ बोलती ही हों और पापरूपी मैल को नष्ट करती हैं।

उन प्रतिमाओं का तेज करोड़ों चन्द्र व सूर्य के तेज को फीका कर देता है अर्थात् छिपा देता है/मंद कर देता है; उनके दर्शन करने से महान वैराग्य के भाव स्थिरता को प्राप्त होते हैं। यद्यपि ये प्रतिमाएँ वचन नहीं बोलतीं; किन्तु उनके दर्शन मात्र से सम्यग्दर्शन प्राप्त हो जाता है।

ऐसी प्रतिमाएँ, जिनके दर्शन करने से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती हो तो ऐसा कौन होगा, जो सामर्थ्य सम्पन्न होने पर भी वहाँ जाकर दर्शन न करे ? अर्थात् ऐसा जानकर सर्व सामर्थ्यवान देवतागण वहाँ अवश्य ही जाते हैं।

पूर्वोक्त, वर्ष में तीन बार कार्तिक, फाल्गुन व आषाढ़ मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी के पूर्वाह्न में सर्वकल्पवासी देवों से युक्त सौधर्मेन्द्र पूर्व दिशा में, भवनवासी देवों से युक्त चमरेन्द्र दक्षिण दिशा में, व्यन्तर देवों से युक्त किम्पुरुष इन्द्र पश्चिम दिशा में और ज्योतिषी देवों से युक्त चन्द्र इन्द्र उत्तर दिशा में जाकर पूजन प्रारंभ करते हैं।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि यह जो चतुर्निकाय के देवों का चारों दिशाओं में पूजन का स्थान बताया गया है, वह परिवर्तनशील है अर्थात् अभी बताया गया दिशावाची स्थान पूजन प्रारंभ करने का है; किन्तु वे सभी प्रत्येक दो प्रहर में अपना स्थान परिवर्तन करते हैं अर्थात् दो प्रहर (3+3=6 घंटे) बाद अपराह्न में कल्पवासी पूर्व दिशा को छोड़कर दक्षिण दिशा में पहुँच जाते हैं; इसीतरह भवनवासी दक्षिण दिशा को

छोड़कर पश्चिम में, व्यन्तरदेव उत्तर में और ज्योतिषी देव पूर्व में आ जाते हैं।

तत्पश्चात् पुनः दो प्रहर बाद पूर्व रात्रि को ये देव प्रदक्षिणा क्रम से पुनः दिशा परिवर्तन करते हैं। इसके बाद दो प्रहर व्यतीत हो जाने पर अपर रात्रि को उसी प्रकार पुनः दिशा परिवर्तन करते हैं।

इसप्रकार अहोरात्रि के 8 प्रहर पूर्ण कर नवमी तिथि को प्रातःकाल कल्पवासी आदि चारों निकायों के देव पूर्वादि दिशाओं में क्रमशः दो-दो प्रहर तक पूजन करते हैं, इसी क्रम से पूर्णिमा पर्यन्त अर्थात् 8 दिन तक चारों निकायों के देवों द्वारा अनवरत महापूजा होती है।

इस पूजन प्रक्रिया में वे देव सर्वप्रथम सुवर्ण-कलशों से भरे हुए विपुल सुगंधित जल से जिन प्रतिमाओं का अभिषेक करते हैं, तदनन्तर कुंकुम, कर्पूर, चन्दन, रत्नदीपकादि से जिननाथ की अत्यन्त भक्तिभाव पूर्वक पूजा करते हैं; इस महान भव्य पूजन में मृदंग, भेरी आदि वाद्य यंत्रों के प्रयोग से सम्पूर्ण वातावरण गुंजायमान होकर सभी को आनंद का रसास्वादन कराता है।

देवताओं द्वारा जिनालयों में विद्यमान जिनबिम्बों की ऐसी भक्ति व उसका फल आगमाधार से जानकर हम मनुष्यों को भी उन वीतराग छवि युक्त शाश्वत प्रतिमाओं के साक्षात् दर्शन का भाव उत्पन्न होता है; किन्तु मनुष्यों की भी मर्यादा है, उनका गमन ढाईद्वीप के बाहर नहीं हो सकता; इसकारण उन्हें अपने स्थान पर ही नन्दीश्वरद्वीप की कृत्रिम रचना करके उनमें स्थित जिनबिम्बों का भावपूर्वक दर्शन व स्तुति आदि करना चाहिए। **भावपूर्वक की गई भक्ति भी वही फल प्रदान करती है, जितनी की साक्षात् भक्ति।**

इसप्रकार वर्ष में तीन बार ऐसे अवसर प्राप्त कर हमें यह महान पर्व मनाना चाहिए।

ooo

पंचकल्याणक : एक अपूर्व अवसर

तीन लोक में यदि कोई सर्वोत्कृष्ट पुण्यशाली हैं तो वे हैं धर्मतीर्थ को प्रवर्ताने वाले तीर्थंकर; जिन्हें ऊर्ध्व, मध्य एवं अधोलोक के उत्कृष्ट महिमावन्त सौ इन्द्र नमस्कार करते हैं।

पूर्व भव में ही तीर्थंकर प्रकृति का बंध करने वाले तीर्थंकर के जीवन काल में पाँच प्रसिद्ध घटनाएँ घटती हैं, जिन्हें पंचकल्याणक के नाम से संबोधा जाता है। वे घटनाएँ या अवसर जगत के लिए अत्यन्त कल्याण-स्वरूप व मंगलकारी होते हैं। नवनिर्मित जिनबिम्ब की शुद्धि करने के लिए जो पंचकल्याणक प्रतिष्ठा पाठ किये जाते हैं, वह उसी प्रधान पंचकल्याणक की कल्पना है, जिसके आरोप द्वारा प्रतिमा में असली तीर्थंकर की स्थापना होती है।

वे पाँच कल्याणक हैं –1. गर्भ, 2. जन्म, 3. तप (दीक्षा), 4. ज्ञान (केवलज्ञान) और 5. मोक्ष (निर्वाण)।

1. गर्भकल्याणक – तीर्थंकर बालक के माता के गर्भ में आने के छह माह पूर्व से लेकर जन्म पर्यन्त कुल 15 माह तक उनके जन्म स्थान पर कुबेर द्वारा प्रतिदिन चार बार साढ़े तीन-साढ़े तीन करोड़ – ऐसे कुल प्रतिदिन 14 करोड़ रत्नों की वर्षा होती रहती है। उस समय पूर्वादि दिशाओं के अग्रभाग से आई हुई दिक्कुमारी देवियाँ माता की सेवा करती हैं। गर्भ वाले दिन से पूर्व रात्रि में माता को 16 उत्तम स्वप्न दिखते हैं, जिनसे भगवान का अवतरण निश्चय कर माता-पिता प्रसन्न होते हैं।

2. जन्मकल्याणक – तीर्थंकर बालक का जन्म होने पर देव – भवनों व स्वर्गों के विमानों में शंख की आवाजें, सिंहनाद तथा घंटे आदि स्वयं बजने लगते हैं। इन्द्रों के मुकुट व आसन कम्पायमान हो जाते हैं, जिनसे उन्हें त्रिलोकीनाथ के जन्म का निश्चय हो जाता है। सभी इन्द्र व देव तीर्थंकर का जन्मोत्सव मनाने बड़ी धूमधाम से पृथ्वी पर आते हैं।

अहमिन्द्र देव अपने सिंहासन से सात कदम आगे आकर भगवान को परोक्ष नमस्कार करते हैं। कुबेर नगर की अद्‌भुत शोभा करता है। इन्द्र की आज्ञा से इन्द्राणी प्रसूतिगृह में जाती है, वह माता को मायामयी निद्रा में सुलाकर, देवमाया से एक दूसरा बालक बनाकर उनके पास लिटा देती है और बाल तीर्थंकर को इन्द्र की गोद में दे देती है।

वह इन्द्र, बालक का सौन्दर्य देखने के लिए 1000 नेत्र बनाकर भी संतुष्ट नहीं होता। ऐरावत हाथी पर इन्द्र, भगवान को लेकर सुमेरुपर्वत की ओर चलता है। वहाँ पहुँच कर भरतादि क्षेत्र संबंधी पाण्डुकादि शिलाओं पर भगवान का देवों द्वारा लाये गये क्षीरसागर के जल से 1008 कलशों द्वारा अभिषेक होता है।

तदनन्तर बालक को वस्त्राभूषण से अलंकृत कर नगर में देवों सहित इन्द्र महान उत्सव के साथ प्रवेश करता है। इन्द्र, बालक के हाथ के अंगूठे में अमृत भरता है और ताण्डव नृत्य आदि अनेकों मायामयी आश्चर्यकारी लीलाएँ प्रगट कर देवलोक को लौट जाता है।

3. तप (दीक्षा) कल्याणक - कुछ काल तक राज्य विभूति का भोग कर वैराग्य का निमित्त मिलने पर भगवान को वैराग्य उत्पन्न होता है। उस समय ब्रह्म स्वर्ग से लौकान्तिक देव आकर उनको वैराग्य वर्द्धक उपदेश देते हैं। इन्द्र उनका अभिषेक कर उन्हें वस्त्राभूषण से अलंकृत करता है। कुबेर द्वारा निर्मित पालकी में भगवान स्वयं बैठ जाते हैं। इस पालकी को पहले तो मनुष्य कंधों पर लेकर कुछ दूर पृथ्वी पर चलते हैं और फिर देव लोग उसे लेकर आकाश मार्ग से चलते हैं। तपोवन में पहुँच कर भगवान बाह्यालंकार का त्याग कर केशों का लुंचन कर 'नमः सिद्धेभ्यः' के उच्चारण पूर्वक दिगम्बर मुद्रा धारण कर लेते हैं।

4. ज्ञानकल्याणक - दीक्षा के पश्चात् केवलज्ञान होने तक तीर्थंकर मुनिराज मौन रहते हैं। कुछ समय पश्चात् शुक्लध्यान द्वारा चार घाति

कर्मों का क्षय कर प्रगट पर्याय में अनंत चतुष्टय प्रगट करते हुए तीर्थंकर बन जाते हैं।

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर अष्ट प्रातिहार्य से सुसज्जित भगवान के समवसरण की रचना करता है। जिसमें 12 सभाओं में मनुष्य, तिर्यंच व देवगति के जीव तीर्थंकर की साक्षात् वाणी सुनकर अपना जीवन सफल करते हैं।

5. मोक्षकल्याणक – आयु का अंतिम समय आने पर भगवान योग निरोध कर अयोग केवली होकर अघाति कर्मों का क्षय करते हुए मोक्षधाम पहुँच जाते हैं।

ऐसे साक्षात् पंचकल्याणक के दृष्टा तो सौभाग्यशाली हैं ही, किन्तु वर्तमान में उन्हीं के प्रतीकस्वरूप पंचकल्याणक को भी कम नहीं आँकना चाहिए।

जो भव्य प्राणी पवित्र भावों पूर्वक, अंतरंग में अत्यन्त उत्साह से मेरा स्वयं का कल्याण हो – ऐसी पवित्र भावना से प्रभु परमेश्वर के पंचकल्याणक में शामिल होकर उनकी अनुमोदना करता है, वह भी तीर्थंकर प्रकृति के बंध का पात्र हो जाता है।

यद्यपि हमारा लक्ष्य बंध की तरफ न होकर मोक्ष की तरफ होना चाहिए, किन्तु जो बंध, मोक्ष की ओर ही ले जाने वाला हो, वह निरर्थक नहीं होता।

पंचकल्याणक मनाने का मूल ध्येय तो यही है कि जैसे भगवान ने अपने स्वरूप को जाना, पहिचाना और उसी में जम गए और प्रगट पर्याय में परमात्मा बन गए, हम भी उसी मार्ग को अपना कर अपने स्वरूप में जम जायें, रम जायें, मात्र यही एक मुख्य उद्देश्य के साथ पंचकल्याणक मनाना चाहिए।

ooo

भ. ऋषभदेव का निर्वाणोत्सव क्यों महत्त्वपूर्ण ?

सभी को विदित है या नहीं ? यदि नहीं तो होना चाहिए कि आज से लगभग 1 कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष पूर्व इस हुण्डावसर्पिणी रूप काल में स्वयं धर्मस्वरूप व जगत के दु:खी प्राणियों को धर्मतीर्थ का उपदेश देनेवाले आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का निर्वाण **माघ कृष्णा चतुर्दशी** को हुआ था।

क्या हमने कभी इस तरह विचार किया कि उनका निर्वाणोत्सव क्यों महत्त्वपूर्ण है ? यद्यपि जैन समाज में लोग शासनकाल प्रवर्तन होने से भगवान महावीर स्वामी के निर्वाणोत्सव को ज्यादा महत्त्व देते हैं, तथापि भगवान ऋषभदेव का महत्त्व कुछ कम नहीं; किन्तु उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि वर्तमान शासन नायक का।

यद्यपि तुलना करके किसका अधिक महत्त्वपूर्ण है, यह कहना उचित नहीं; क्योंकि दोनों का अपनी-अपनी जगह अपना-अपना स्थान है।

यदि हम शास्त्रों के अनुसार इतिहास की गहराई में जाकर देखें तो भगवान ऋषभदेव को याद करना कितना महत्त्वपूर्ण बन जाता है। जरा याद करें पिछली उत्सर्पिणी के तीसरे काल में जब 24 तीर्थंकर हो चुके थे, अन्य भी मोक्ष जाने वाले जा चुके थे, तब उनके बाद इस सम्पूर्ण भरतक्षेत्र में चौथे, पाँचवें व छठवें काल के 9 कोड़ाकोड़ी सागर व अवसर्पिणी काल के प्रथम, द्वितीय व तृतीयकाल के 9 कोड़ाकोड़ी सागर तक मोक्ष का द्वार बंद पड़ा हुआ था (इस भरत क्षेत्र की अपेक्षा)।

यदि देखें तो लगभग 18 कोड़ाकोड़ी सागर तक मोक्षगामी जीव व मोक्षमार्ग का उपदेश दूर-दूर तक नजर नहीं आ रहा था; क्योंकि इस 18 कोड़ाकोड़ी सागर के काल में भोगभूमि ही थी और उस समय शुरु के मात्र 4 गुणस्थान ही हो सकते थे, उससे आगे बढ़कर संयम धारण करने का अवसर बंद था।

इसतरह इतना काल व्यतीत होने के पश्चात् भव्य जीवों के भाग्य

वश प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव का सर्वार्थसिद्धि विमान से अवतरण हुआ और संयम धर्मरूप मोक्षमार्ग व मोक्ष का प्रणयन हो गया।

गजब की बात तो यह है कि मोक्ष तो बहुत दूर, लोगों ने नग्न दिगम्बर साधु भी नहीं देखे थे। जब स्वयं ऋषभदेव ने मुनिदीक्षा ली तो उनकी प्रजा भी यह नहीं समझ पा रही थी कि ऐसा क्यों ? अथवा ये क्या है ? वे उन्हें अपना राजा ही मान रहे थे। उनकी सेवा करना चाह रहे थे। उन्हें उपहार देना, अपनी कन्याएँ देना आदि के भाव व्यक्त कर रहे थे। किसी अपेक्षा से विचार करें तो ऐसी दुर्दशा तो अभी पंचमकाल में भी नहीं है। वर्तमान में लोग जानते हैं कि नग्न दिगम्बर साधु कौन होते हैं ? कैसे होते हैं ?

इसतरह के उस अज्ञानतम रूप वातावरण में भगवान ऋषभदेव का अवतरण; उनके द्वारा संयमधर्म का प्रणयन और फिर क्रमशः मोक्ष हेतु अनुगमन; यह सब उन्हीं की देन है, जिसका आगामी पीढ़ी के तीर्थंकरों ने भी अनुसरण किया।

इसी संदर्भ में एक बात और जानने योग्य है कि भगवान ऋषभदेव का शासन सर्वाधिक काल का था। उनके मोक्ष जाने के बाद 50 लाख करोड़ सागर वर्ष बाद दूसरे तीर्थंकर अजितनाथ हुए और श्री अजितनाथ तीर्थंकर के बाद काल अल्प होता गया अर्थात् तीसरे तीर्थंकर 30 लाख करोड़ सागर वर्ष बाद हुए। इससे सिद्ध होता है कि प्रथम तीर्थंकर का शासन काल सबसे अधिक था। इससे भी भगवान ऋषभदेव का महत्त्व और अधिक बढ़ जाता है।

इस लेख में उपर्युक्त बिन्दु बताकर यह खास बात सबके सामने लाने की है कि हमें भगवान ऋषभदेव का मोक्षकल्याणक प्रत्येक वर्ष **माघ कृष्णा चतुर्दशी** को अवश्य ही मनाना चाहिए और उस समय यही भावना उर्ध्व रहे कि जिस तरह उन्होंने अपना कल्याण किया, उसी तरह हम भी अपना कल्याण करें – यही भावना है। ○○○

महावीर जयन्ती

एक पुकार भगवान महावीर के द्वार!

हे प्रभु! हम सब आगामी काल में आने वाली **चैत्र शुक्ला त्रयोदशी** रूप परम पावन शुभ तिथि को याद करने हेतु आतुर हैं, क्योंकि उस दिन आपने हम जैसे भूमिगोचरों के मध्य 16वें अच्युत स्वर्ग से च्युत हो, कुण्डलपुर (कुण्डग्राम) में अवतरित होकर परद्रव्यों से ममत्व तोड़ते हुए, वस्तुस्वभाव को स्वीकार कर, निज स्वभाव से नाता जोड़कर यथाजात मुद्रा को धारण कर अनंत चतुष्टयरूप अंतरंग लक्ष्मी व समवसरणरूप बहिरंग लक्ष्मी को प्राप्त करके पृथ्वी के समस्त मानवों को हितकारी; पिपासु भव्य जीवों को संसार दु:ख से निकालनेवाली व उत्तम सुख प्रदान करने वाली शिक्षा देकर, संसार के समस्त दंद-फंदों से निवृत्त हो, मुक्तिकन्या के स्वयंवर में चयनित होकर सादि-अनन्त काल के लिए निजवैभव को भोगने हेतु विश्रान्त हो गये।

हम उस शुभ दिवस को कैसे भूल सकते हैं, जिसका इंतजार हम सबको हर पल रहता है। हम उस दिवस की अनुमोदना, इसलिए करना चाहते हैं; क्योंकि आपने अपने जन्म को सार्थक करते हुए अनंत काल के लिए जन्म-जन्मान्तरों के दु:खों से छूटकर अनंत अव्याबाध सुख को प्राप्त करके आप हम सबके लिए प्रेरणा के स्रोत बने हुए हैं।

हम आपका जन्म महोत्सव आपकी साक्षात् उपस्थिति में मनाने को आतुर हैं। आपको 'अत्र अवतर अवतर' कहकर बुलाना चाहते हैं। 'अत्र तिष्ठ तिष्ठ' कहकर रोकना चाहते हैं तथा 'अत्र मम सन्निहितो' कहकर हृदय की गहराईयों से महसूस करके यह देखना चाहते हैं कि आप में और हममें ऐसा क्या अंतर आ बैठा है, जो आप तो परम सुखी हैं और हम अत्यन्त दु:खी हैं।

किन्तु प्रभु! आपको बुलाने में हम कुछ भय और आशंका से संतप्त

हैं; क्योंकि आपको बुलाने वाले बहुत प्रकार के लोग हैं और आप तो एक हैं, फिर आप किसके यहाँ आओगे ?

आपके अनुयायियों में इतनी विविधता व्याप्त है कि कहीं ऐसा न हो कि आप ही धर्म संकट में पड़ जायें, क्योंकि कोई आपको निर्वस्त्र नग्नरूप में देखना चाहता है तो कोई सवस्त्र व शृंगारितरूप में; कोई आपको निर्लेप देखने का इच्छुक है तो कोई चंदनादि से युक्त सलेप देखना पसंद करेगा।

इतना ही नहीं कोई आपके सामने भोगों का भिखारी बनकर दोनों हाथों में कटोरे को लेकर खड़ा होगा तो कोई आपको भँवर में फँसी हुई अपनी नैया को पार कराने वाला खेवटिया बनाने का प्रयास करेगा।

और क्या कहूँ प्रभो! कोई आपसे संतान माँगेगा तो कोई नौकरी की याचना करेगा; इतना ही नहीं, परीक्षा में पास कराने हेतु नारियल फोड़ने जैसी रिश्वत भी देने को तैयार होगा।

और प्रभुजी! अंदर की बात कहूँ तो आपके पास उनको देने के लिए कुछ भी नहीं है। और यदि आपने उनकी मनोकामना पूर्ण नहीं की तो वे आपको ही अपमानित करने का प्रयास करेंगे। इसलिए मुझे लगता है कि प्रभु, ऐसा जानकर आप शायद ही इन विविध प्रकार के लोगों के मध्य आ पाओगे।

और हाँ प्रभु! यदि आप साक्षात् नहीं आये तो क्या हुआ, लोग मानने वाले नहीं हैं, वे आपको बुलाने हेतु आपकी प्रतिष्ठा किसी पत्थर की या धातु की मूर्ति में करने का प्रयास अवश्य करेंगे और उसमें आपको पाकर फिर वही करेंगे, जो ऊपर लिखा है।

और तो और प्रभुजी! आपको प्रतिमाजी में विराजमान करने की प्रक्रियास्वरूप प्रतिष्ठा में जो मंत्र देने अर्थात् सूरिमंत्र देने की विधि भी समझ के परे हो गयी है। कोई तो श्वेतवस्त्रधारी साधुओं को तो कोई नग्न

दिगम्बर संतों को इस प्रक्रिया के योग्य मानते हैं अथवा कोई प्रतिष्ठाचार्य नग्न होकर इस कार्यविधि को अंजाम देना चाहते हैं।

तो प्रभु! आप किस प्रकार की विधि की प्रतिष्ठा को पसंद करोगे? समस्या तो इधर भी पीछा नहीं छोड़ रही है। इसलिए आप इस रूप में भी नहीं आ पाओगे।

प्रभुजी! तो फिर क्या आप अपनी ही प्रतिकृति रूप मुनि अवस्थारूप में आकर दर्शन दोगे? तो बताओ यह अवस्था सवस्त्ररूप चलेगी या निर्वस्त्र? उसमें भी अंतरंग में कषायरहित संतों के रूप में या कषायसहित? तथा बाह्य में पूर्णत: साधु योग्य 28 मूलगुण वालों के रूप में या फिर दो चार गुण कम भी चलेंगे? क्योंकि दुनियाँ में लोग सब प्रकार के साधुओं को तथा अपनी-अपनी मान्यता से अलग-अलग रूपों में सबको मानते हैं, किन्तु आप किसरूप में दर्शन दोगे? मुझे लगता है, यह भी नहीं चलेगा।

कदाचित् क्या आप अपनी ही वाणी (जिनवाणी/शास्त्र) के रूप में अपना स्वरूप प्रकट करोगे? उसमें भी जो वर्षों से अविच्छिन्न आचार्य-मुनियों से प्रवाहित हो रही है या उसमें भी किसी विशिष्ट शताब्दी के आचार्यों द्वारा प्रणीत हो?

उसमें भी पुराने आचार्य प्रमाण होंगे या नये? उनमें भी आगम या अध्यात्म वाले? करणानुयोग या द्रव्यानुयोग वाले? प्राकृत, संस्कृत भाषा या अपभ्रंश वाले? तथा वर्तमान के हिन्दी वाले या पण्डित/विद्वान नहीं चलेंगे? उनमें भी सबके अर्थ निकालने व ग्रहण करने की विवक्षाएँ बहुत हैं, उनमें आपको हम किस रूप में माने? आपके स्वरूप को हम किसप्रकार स्वीकार करें?

उपर्युक्त इतने उलझे हुए वातावरण में आपका आना कठिन है, इसलिए प्रभुजी! आप आना भी मत! शायद ऐसा पहला परमभक्त होगा,

जो आपको यहाँ आने से रोक रहा है। यह मैंने सर्व सामूहिक माहौल देखकर कथन किया है, किन्तु मेरे व्यक्तिगत भाव कुछ अलग ही हैं।

जब आपके बाल्य अवस्थावाले रूप को हजार नेत्र बनाकर निहारने वाला इन्द्र संतुष्ट नहीं हो सका तो फिर आपके नग्न दिगम्बर सौम्य मुद्रा-धारी, शांत छवि युक्त परमौदारिक रूप को निहारने में मेरे नेत्र तृप्त होने का नाम न लेंगे और आपके वापस जाने का वियोग मुझे असहनीय होगा।

इसलिए प्रभु! मैं आपके वास्तविक द्रव्य-गुण-पर्यायमय स्वरूप को अपने नेत्रों में बसाना चाहता हूँ और उस स्वरूप से अपने स्वरूप का मिलान कर, आप समान अपने को अनुभव कर इस विविधता भरे संसार से मुक्त होकर आपके साथ सादि-अनंतकाल तक रहने को इच्छुक हूँ।

हे प्रभु! यही पुकार आपके द्वार पर है, जो स्वीकृत हो जाये, बस इस भावना से आपके जन्मदिवस (जन्मकल्याणक) की तैयारी है। हे प्रभु! आपकी सदैव जय हो!

जन्मकल्याणक विशेष -

1. जन्म दिवस उसी का सार्थक है, जिसने अपने जन्म को सफल किया हो। सफलता का पैमाना यह है कि अब वह किसी माता को रुलायेगा नहीं, जन्म-मरण करेगा नहीं तथा अन्य प्राणियों के लिए कल्याण का प्रेरक बने।

2. वास्तव में जन्मजयंती शब्द सामान्य है; किन्तु जन्मकल्याणक विशेष है, अत: **'जन्मकल्याणक' शब्द का प्रयोग उत्तम है।**

3. कल्याणक क्या है? - यह 'कल्याणक' शब्द 'कल्याण' में 'कन्' प्रत्यय लगाने से बनता है, जिसका अर्थ है समृद्धशाली/आनंददायी।

तीर्थंकर नामकर्म की सत्तावाले सर्वोत्तम पुण्यशाली जीव के

सम्पूर्ण भवचक्र में मात्र एकबार ही घटित होनेवाली समृद्धशाली गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान व निर्वाण - इन पाँच घटनाओं को कल्याणक कहा जाता है।

4. जन्मकल्याणक वाले बाल तीर्थंकरों का जन्मदिवस तो स्वर्गों के देवतागण बड़ी ही धूमधाम से सुमेरु पर्वत पर ले जाकर मनाते हैं।

5. उनके जन्मते ही तीनों लोकों में उत्सव का वातावरण तैयार हो जाता है।

6. वे तीर्थंकर जन्म से ही तीन ज्ञान के धारी होते हैं।

भगवान महावीर स्वामी के विषय में कुछ विशिष्ट जानकारियाँ-

1. महावीर स्वामी का चिह्न - सिंह	11. कुमार काल - 30 वर्ष
2. जन्मस्थान - कुण्डलपुर (वैशाली)	12. छद्मस्थ काल - 12 वर्ष
3. पिता - श्री सिद्धार्थ	13. केवली काल - 30 वर्ष
4. माता - त्रिशलादेवी	14. वैराग्य का कारण - जातिस्मरण
5. गर्भतिथि - आषाढ़ शुक्ला षष्ठी	15. दीक्षा - मगसिर कृष्णा दशमी
6. जन्मतिथि - चैत्र शुक्ला त्रयोदशी	16. केवलज्ञान - वैशाख शुक्ला दशमी
7. पाँच नाम - वीर, अतिवीर, सन्मति, वर्धमान व महावीर	17. समवसरण का विस्तार - एक योजन
8. शरीर का वर्ण - स्वर्ण सदृश	18. मुख्य गणधर - इन्द्रभूति गौतम
9. शरीर की ऊँचाई - 7 हाथ	19. मोक्षस्थान - पावापुरी
10. आयु - 72 वर्ष	20. निर्वाण - कार्तिक कृष्णा चतुर्दशी

ooo

कुन्दकुन्द जयन्ती

धन्य जन्मजयन्ती 'कुन्दकुन्दाचार्य' की

क्यों भूल जाते हैं हम उस महान व्यक्तित्व को, जिनके उपकारों की वजह से हम आज जिंदा हैं; हमारा सौभाग्य जिन्दा है या यूँ कहें कि वीर शासन व कल्याण का मार्ग जिंदा है; आराधकों का मार्ग, साधकों का मार्ग जिंदा है।

आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व प्रथम शताब्दी में इस भारत भूमि पर अवतरित होकर जनमानस को प्रेरणादायी मात्र 11 वर्ष की उम्र में गृहस्थावस्था के समस्त बंधनों से मुक्त होकर मुक्ति के मार्ग को प्रशस्त करने हेतु यथाजात मुद्रा निर्ग्रन्थ नग्न दिगम्बर साधु होकर स्वयं अतीन्द्रिय आनन्द का रसपान करते हुए छठवें-सातवें गुणस्थान में झूलते हुए भी **'न मैं अप्रमत्त हूँ, न प्रमत्त हूँ, बस एक ज्ञायकभाव हूँ'** ऐसा कहकर सिद्ध कर दिया कि संसार के समस्त पद अपद हैं; किन्तु जो ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ ऐसा मैं एकमात्र ज्ञायक तत्त्व हूँ और ऐसी स्वीकृति ही सर्व प्राणियों के लिए मुक्ति का मार्ग, सुखी होने का मार्ग है।

दुनिया में सर्व साधारण पुरुष स्वयं का तथा अन्य का निरर्थक जन्म दिवस तो मनाते हैं, किन्तु दक्षिण भारत के कर्नाटक प्रान्त में स्थित कौण्डकुन्दपुर ग्राम में **माघ शुक्ला पंचमी** को जन्मे आचार्य कुन्दकुन्द को भूलने का कदाचित् साहस करते हैं।

वास्तव में जन्मदिवस तो उनका मनाया जाता है, जिन्होंने उस जन्मदिवस को सार्थक किया हो तथा जन्म-मरण से मुक्त होने का मार्ग प्राप्त कर महन्तता को प्राप्त हुए हों।

आचार्य कुन्दकुन्द की महानता कई कारणों से प्रसिद्ध है। **प्रथम** तो उनके पद्मनन्दी, कुन्दकुन्द, एला, वक्रग्रीवा एवं गृद्धपिच्छ - ऐसे विशेष सार्थक नाम हैं। **द्वितीय** विशेषता उन्हें चारणऋद्धि प्राप्त थी, जिससे उनकी महानता और बढ़ जाती है। **तृतीय** विशेषता उनके विदेह गमन

तथा वहाँ पर साक्षात् श्री सीमंधरस्वामी की दिव्यध्वनि का श्रवण तथा **चौथी** विशेषता श्वेतांबरों को विवाद में परास्त करना। इन सभी विशेषताओं से उनका गौरव बहुत ऊँचा हो जाता है।

इन सभी के अतिरिक्त उनके द्वारा रचित समयसार, प्रवचनसार, नियमसार, पंचास्तिकाय व अष्टपाहुड़ आदि 84 पाहुड़ तथा बारसाणुवेक्खा, रयणसार, सिद्धभत्ति, सुदभत्ति, चारित्तभत्ति, जोइ-भत्ति, आइरियभत्ति, णिव्वाणभत्ति, पंचगुरुभत्ति, थोस्सामि थुदि (तित्थयरभत्ति) आदि अनेक ग्रन्थ उनकी तीक्ष्णबुद्धि व महानता के ही परिचायक हैं।

वास्तव में देखा जाये तो उनकी महानता का आधार उनके अनेक नाम नहीं, किन्तु उनके अनेक काम हैं। कामों में भी मात्र उनकी कृतियाँ नहीं, बल्कि उनमें वर्णित आत्महितकारी तत्त्वव्यवस्था के आयाम हैं।

इसी तरह उनकी महानता चारणऋद्धि से न होकर स्वरूप में चरणरूप चारित्र वृद्धि से है।

श्वेताम्बरों को तत्त्वचर्चा में परास्त करने से महानता नहीं, किन्तु कषायरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने से है।

वे विदेह जाने से महान नहीं, किन्तु वैदेही होने से महान हैं।

आचार्य कुन्दकुन्ददेव ने इन सब विशेषताओं सहित जगत को संसार दु:ख से बचाने हेतु सीधा और सरल एकमात्र शुद्धात्मतत्त्व को प्राप्त करने का मार्ग बताया। इसलिए जनमानस सहज कह उठा - **'हुए हैं, न होयेंगे मुनिन्द कुन्दकुन्द से'** तथा उनकी असाधारण बौद्धिक क्षमता से प्रभावित जगत उन्हें **'कलिकाल सर्वज्ञ'** आदि उपमाओं से पुकारने लगा।

इसलिए माघ शुक्ला पंचमी को उनकी जन्मजयन्ती, उनके उपकारों को स्मरण करते हुए अवश्य मनाना चाहिए। किसी ने उनके विषय में उचित ही लिखा है -

'बनावुं पत्र कुन्दननां रत्नोंना अक्षरो लखी।
तथापि कुन्दसूत्रोनां अंकाये मूल्य न कदी।।' ○○○

नये वर्ष में नया क्या ?

देश का ऐसा कौन सा व्यक्ति होगा जो आगन्तुक नव वर्ष के स्वागत हेतु अपने नयनों को निमिष मात्र के लिए भी अपलक रखने के बजाय; उन्हें अपने दृष्टव्य से ओझल करने का अवसर प्रदान करेगा।

31 दिसम्बर की वह रात समस्त जन-मानस के लिए एक मनोरंजन की सौगात के रूप में एक अलग तरह का उत्साह और खुशी का उपहार देने हेतु मानो आतुर हो, जिसमें बच्चे और नौजवान तो क्या बड़े-बुजुर्ग व्यक्ति भी अपने बढ़प्पन की मर्यादायें तोड़ते हुए बालकवत् चेष्टाएँ करने से नहीं चूकते।

वह रात रंग-बिरंगे वस्त्रों से रंगीन तथा खान-पान व नृत्य-संगीत की संगीनता के सुमेल से सुसज्जित सबके मन में मनोरंजन से परिपूर्ण **मनो-सृष्टि** का शृंगार करती हुई मानो सबको अपने आगोश में संकुचित करने का साहस कर रही हो।

प्रफुल्लित मन से सरावोर उस रात में प्रत्येक व्यक्ति जात-पातरूपी छुआछूत की बीमारी से अस्पर्शित रहकर देश की एकता व अखण्डता का परिचय देता है।

किन्तु ये क्या, फूल की खुशबू के साथ काँटे के समान अच्छाई की सुगंध के साथ बुराई का सहवास यहाँ पर भी दस्तक दिये बिना नहीं रहता। समाज का कुछेक वर्ग आनन्दातिरेक में शराब और शबाब में उन्मत्त अपनी भारतीय परम्परा के विरुद्ध अपने ही देश की सदाचारयुक्त संस्कृति का हनन करने से भी नहीं चूकता।

इसमें कोई संदेह नहीं कि इस तरह की विसंगतियों का हमारे देश में प्रवेश पाश्चात्य संस्कृति की ही देन है और क्यों न हो, जब हम उनके द्वारा प्रदत्त नववर्ष की तिथि तथा संस्कारविहीन स्वच्छन्द प्रवृत्ति स्वरूप संस्कृति को अपनाने में तनिक भी संकोच नहीं कर रहे हैं। तब ऐसा तो होना ही था।

अंग्रेजों के अंग्रेजी नव वर्ष व उनके कैलेण्डर की वास्तविकता का पता लगने पर आश्चर्य हुए बिना न रहेगा। **पण्डित दयानन्द शास्त्री देहरादून की मानें** तो उनके अनुसार भारतीय खगोल वेत्ताओं ने सर्वप्रथम भारतीय कैलेण्डर बनाया। जिसमें एक, दु, तिरि आदि में अम्बर लगाकर एकाम्बर दुअम्बर आदि बाराम्बर तक बारह माह बनाये थे।

इसके प्रचलन में आने के 57 वर्ष पश्चात् ही सम्राट आगस्तीन द्वारा ईसवी सन् के निर्माण के समय स्वयं के जन्मदिवस का महीना छठवाँ (षष्ठाम्बर) होने से इसमें माह का नाम अपने आगस्तीन नाम से 'आगस्त' कर दिया तथा अपने भूतपूर्व महान सम्राट जुलियस के नाम पर पंचाम्बर (पाँचवाँ महीना) के स्थान पर जुलियस नाम से जुलाई कर दिया। तथा प्रारंभिक महीने का नाम एकाम्बर के स्थान पर ईसामसीह के जन्मदिवस 25 दिसम्बर के छह दिन बाद (जन्म छठी) होने से जनवरी कर दिया। इसी तरह अन्य नाम भी कुछ यथावत् रखे, कुछ पूर्णत: बदले एवं माह के दिनों में भी बहुत फेरफार कर दिया।

इस तरह की जिद से बनाये गए कैलेण्डरों की क्या आवश्यकता थी हमारे देश को? जैनों के सर्व प्राचीन वीर निर्वाण संवत् को राष्ट्रीय दर्जा देने में क्या आपत्ति थी? वीर निर्वाण के 470 वर्ष पश्चात् विक्रम संवत् को तो सर्व हिन्दु सम्प्रदाय स्वीकारता है, उसे मुख्यता देते; वीर निर्वाण से 605 वर्ष पश्चात् शक् संवत्, 846 वर्ष पश्चात् गुप्त संवत् तथा 1120 वर्ष पश्चात् प्रारंभ हुए हिजरी संवत् - इनमें से किसी को तो प्रमुख किया जा सकता था; किन्तु जिन्होंने हमारे देश पर अनुशासन किया, हमने उन्हीं की समयसारिणी को पूर्णरूपेण सर्वमान्यरूप से अपना लिया।

एक बात जानकर और आश्चर्य होगा कि विश्व के अनेक देश नूतन वर्ष का स्वागत अपने-अपने तरीके से करते हैं।

जापानी 29 दिसम्बर से 3 जनवरी तक नये वर्ष को 'याबुरी' कहकर मनाते हैं तो **म्यांमार** देश अप्रैल के मध्य 'तिजान' (तीन दिन) नाम से,

ईरान देश 'नौरोज' (नया दिन) कहकर तो **थाईलैण्ड** देश 13 से 15 अप्रैल के मध्य 'सोन्गक्रान' नाम से; इसी तरह **रूस** देश 1 जनवरी तथा 13-14 जनवरी को 'पुराना नया साल' नाम से, **अफगानिस्तान** देश अमल की पहली तारीख (लगभग 21 मार्च) को तथा **स्पेन** देश 31 दिसम्बर को मनाता है। इसी तरह अन्य अनेक देश भी इस संबंध में किसी से बँधकर नहीं चलते।

देखा जाये तो हमारे भारत देश में भी नूतन वर्ष के संबंध में विविधता की कमी नहीं। विभिन्न धर्मावलम्बियों के नववर्ष प्रारंभ की अलग-अलग मान्यताएँ हैं।

यथा हिन्दुओं का नववर्ष 'गुडी पड़वा' व 'उगड़ी' चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा (लगभग 22 मार्च) से प्रारंभ होता है, उनकी मान्यतानुसार यह सृष्टि रचना दिवस अथवा ऋतु-परिवर्तन स्वरूप वसंतोत्सव का स्वर्णिम दिन है। विक्रम संवत् का नया वर्ष भी यहीं से प्रारंभ होता है।

इस्लामी मोहर्रम माह की प्रथम तारीख से तो **सिक्ख** अप्रैल माह में वैशाखी के रूप में, **ईसाई** 1 जनवरी को ईसामसीह के जन्मोत्सव के 6 दिन बाद से, **जैन** अक्टूबर-नवम्बर में महावीर निर्वाणोत्सव से, **सिंधी** चेटीचंड (चैत्र चाँद) के रूप में चैत्र शुक्ल द्वितीया से (उनके भगवान झूलेलाल के जन्मदिवस से), **पारसी** 'नवरोज' (नया दिन) लगभग 19 अगस्त से एवं हिब्रू, ग्रैगरी कैलेण्डर के अनुसार 5 सितम्बर से 5 अक्टूबर के बीच नया वर्ष मनाते हैं।

इसके अतिरिक्त विविध प्रान्तों में, विविध नामों से अलग-अलग महीनों में नव वर्ष मनाने का प्रावधान है।

जैसे - **कर्नाटक, महाराष्ट्र** व **आंध्रप्रदेश** में 'उगड़ी' चैत्र माह के प्रथम दिन से जो महाराष्ट्र में 'गुड़ी पड़वा' नाम से प्रसिद्ध है। **सिक्किम** में 'लोजोंग' दिसम्बर में, **आसाम** में 'बोहाग बिहु' 14-15 अप्रैल से, **तमिल** में 'पुथाण्डु' चैत्र माह के प्रारंभ से, **जम्मू और कश्मीर** में

'नवरेह' चैत्र माह के प्रथम दिन से, **केरला** में 'विशु' 14 अप्रैल से, **हिमाचल प्रदेश** में 'चेटी चंड' चैत्र माह की द्वितीया से, **पंजाब** और **हरियाणा** में 'बैशाखी' 13-14 अप्रैल से, **बंगाल, आसाम, त्रिपुरा, झारखण्ड** व **उड़ीसा** में 'पोहेला बैशाख' मध्य अप्रैल से तथा **गुजरात** में 'वेस्तु वारस' अक्टूबर-नवम्बर में दीपावली के पश्चात् नूतन वर्षाभिनन्दन किया जाता है। इनके अतिरिक्त मारवाड़ियों के 'थापना' चैत्र शुद के प्रथम दिन से नव वर्ष का प्रारंभ होता है।

उपर्युक्त सभी तथ्यों से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि विविध देशों में, प्रान्तों में तथा विविध धर्मों में सभी ने नववर्ष को अपनी-अपनी मान्यता के साथ जोड़ा है। जिनमें ज्यादातर तो उनकी अपने-अपने धर्मगुरु अथवा प्रभु परमेश्वर के प्रति अगाध श्रद्धा परिलक्षित होती है। और इसी कारण सबके अपनी-अपनी मान्यतानुसार निजी कैलेण्डर भी अपनी निजी कॉम या क्षेत्र में प्रचलित हैं।

वास्तव में देखा जाये तो नव वर्ष आखिर है क्या? मात्र काल गणना का प्रारूप ही तो है। हरेक दिन सूर्योदय के बाद सूर्यास्त तो होता ही है। इस दिन नया तो कुछ भी नहीं होता। सूर्य हमेशा की तरह पूर्व से उदित होकर पश्चिम दिशा में विलीन हो जाता है और ऐसा तो प्रतिदिन, प्रति सप्ताह और प्रतिवर्ष होता है। इसलिए मनाना ही है तो फिर नया वर्ष ही क्यों? नया माह, नया सप्ताह, नया दिन और हर पल नया ही तो है।

और वास्तव में देखा जाये तो इसमें नया क्या है, सब पुराने जैसा ही तो है। पिछले हजारों सालों से कैलेण्डर बदल रहे हैं और आगे भी बदलते रहेंगे, पर नया कुछ नहीं होगा।

यदि कुछ नया हो सकता है तो **नई सोच, नये विचार, नया उत्साह और नया संकल्प जरूर हो सकता है और वह संकल्प देश के लिए हो, समाज के लिए हो, परिवार के लिए हो तथा स्वयं की व्यक्तिगत लौकिक और धार्मिक उन्नति के लिए हो।**

इसलिए नया वर्ष हर क्षण मनायें कुछ इस तरह की सोच और संकल्प के साथ –

'हर पल जियो जिन्दगी को, उस तमन्ना के साथ।
न कोई ख्वाहिश बाकी रहे, आगन्तुक नये वर्ष के बाद।।'

निष्कर्ष व संकल्प – वास्तव में यह 1 जनवरी का दिन भारतियों का नया वर्ष किसी भी रूप में नहीं है। इस देश के मूल किसी भी सम्प्रदाय का नहीं है तो फिर विचार कीजिए कि यह जैनियों का कैसे हो सकता है ? फिर प्रश्न उठता है कि अब समाज तो क्या सम्पूर्ण देश ने इसे नये वर्ष की मान्यता दे दी है; फिर तो हमें मनाना ही पड़ेगा न! इसका उत्तर यही है कि हम प्रथम तो अपनी मान्यता में सुधार अवश्य करें कि हमारा नया वर्ष कब से प्रारंभ होता है, वह स्वीकार करें। उसके बाद यदि सामाजिक परिस्थितिवश इसमें सहभागी होना भी पड़े तो निम्न संकल्प अवश्य करने योग्य हैं –

1. इस दिन सभी यह प्रण करें कि अब हम कोई ऐसा काम नहीं करेंगे, जिससे किसी भी अन्य प्राणी को हमारे निमित्त से तकलीफ पहुँचती हो।

2. अभी तक हमने पूर्व में जो अपराध किये, उनका प्रायश्चित्त अवश्य करें।

3. देव–शास्त्र–गुरु का यथार्थ श्रद्धान रखते हुए, उनके बताए हुए मार्ग पर चलने हेतु दृढ़ संकल्पित रहेंगे।

4. कुछ यम (जीवन पर्यन्त के लिए) अथवा नियम (समयावधि के लिए) अवश्य लेना चाहिए, जैसे – अभक्ष्य खान–पान संबंधी, वस्त्र मर्यादा, भ्रमण मर्यादा आदि।

5. इस अवसर पर धार्मिक कार्यों जैसे पूजन, स्वाध्याय, प्रोषधोपवास आदि संबंधी भी यथाशक्ति नियम लेना चाहिए।

6. सर्व मुख्य नियम तो यह लेना चाहिए कि हमने आज तक अपने आत्मा को अर्थात् स्वयं को दु:खी किया है, अब किसी भी कीमत पर उसे दु:ख नहीं देंगे। ○○○

क्या है ये 'मकर संक्रान्ति' ?

हमारा भारत देश त्यौहारों की खान है। वर्ष में भले ही दिन 365 होते हों, किन्तु तीज-त्यौहार एवं पर्वों की सूची हजारों की संख्या पार कर चुकी है। उनमें कई तो 'स्वतंत्रता-दिवस' जैसे राष्ट्रीय पर्व हैं, 'दीपावली' जैसे धार्मिक तथा 'जन्म-महोत्सव' जैसे सामाजिक तथा व्यक्ति प्रधान भी हैं।

इस देश में विविध संस्कृति व अनेक जातियों के लोग रहते हैं। पर्व मनाने के उनके तरीके भी अलग-अलग तरह के होते हैं। पर्वों या त्यौहारों को मनाने में ये इतने मशगूल हो जाते हैं कि उनमें फिर किसी तरह का लाभ या हानि नजर नहीं आती।

वास्तव में पर्व या उत्सव तो उसका नाम है, जो अपने परिवार, समाज व राष्ट्र के प्रत्येक नागरिक को हितकारी हो। उस त्यौहार से सबको खुशी हो तथा किसी का नुकसान नहीं हो। पर्व या उत्सव तो वे हैं, जो किसी भी तरह के अंधविश्वास से परे, पूर्णत: प्रायोगिक, सर्वहिताय, निजी स्वार्थों से दूर तथा सभी के लिए प्रेरणादायी हों।

उपर्युक्त नियम का ध्यान रखते हुए अब हम जनवरी माह में आने वाले उत्सव पर दृष्टिपात करते हैं, जिसका नाम है - **'मकर संक्रान्ति'।**

क्या है ये मकर संक्रान्ति ? सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश करना 'संक्रान्ति' कहलाता है तथा **सूर्य के 'मकर' राशि (12 राशियों में से एक विशेष राशि) में प्रवेश करने को 'मकर-संक्रान्ति' कहते हैं।**

इसी 'मकर-संक्रान्ति' को देश में पर्व संज्ञा दी गई है। इसके संबंध में भी विस्तृत धारणा यह है कि पौष (दिसम्बर-जनवरी के मध्य) मास में सूर्य जब 'धनु राशि' को छोड़कर 'मकर-राशि' में प्रवेश करता है,

तभी उसी दिन से सूर्य की उत्तरायण गति भी प्रारंभ मानी जाती है। **इस कारण कहीं इसे 'उत्तरायणी' पर्व भी कहते हैं।**

वर्तमान वैज्ञानिकों के अनुसार भारत देश उत्तरी गोलार्ध में स्थित माना गया है। मकर संक्रान्ति से पहले सूर्य दक्षिणी गोलार्ध में होता है अर्थात् भारत से अपेक्षाकृत दूर होता है। जिससे यहाँ भारत में रातें बड़ी तथा दिन छोटे होते हैं; किन्तु मकर संक्रान्ति से सूर्य उत्तरी गोलार्ध की ओर आना शुरु होता है, जिससे दिन बड़ा होने से प्रकाश अधिक तथा रात छोटी होने से प्राणियों में चेतनता एवं कार्यशक्ति में वृद्धि होती है।

एक बात और विशेष है कि भारतीय पद्धति की सभी तिथियाँ चन्द्रमा को आधार मानकर निर्धारित की जाती हैं, किन्तु मकर संक्रान्ति को सूर्य की गति से निर्धारित किया जाता है। इसी कारण यह पर्व प्रतिवर्ष लगभग 14 या 15 जनवरी को पड़ता है।

मकर-संक्रान्ति की मान्यता मुख्यतया भारत व नेपाल - इन दो देशों में है। भारत में भी सर्वत्र न होकर किसी खास प्रान्तों में अपनी विविध धारणाओं के अनुसार है। जैसे उत्तर भारत में इसे 'लोहरी', दक्षिण भारत में इसे 'पोंगल' तथा मध्य भारत में 'संक्रान्ति' नाम से मनाया जाता है।

यदि पृथक्-पृथक् प्रान्तों में देखें तो **बिहार और उत्तरप्रदेश** में इसे 'खिचड़ी', **तमिलनाडु** में 'पोंगल', **असम** में 'माघ बिहू', **पंजाब** में 'लोहड़ी', **कर्नाटक, केरल व आंधप्रदेश** में 'संक्रान्ति', **गोवा, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, हरियाणा व हिमाचल** में 'मगही', **कश्मीर** में 'शिशुर सेक्रांत' तथा **नेपाल** में कहीं 'माघे संक्रान्ति' व कहीं 'मगही' नाम से मनाया जाता है। इस तरह ये सामान्य कथन हैं, विशेष और भी संभावनाएँ हैं, जो शोध योग्य हैं।

'मकर-संक्रान्ति' मनाने की मान्यता और मनाने के कारणों के संदर्भ में विविध प्रान्तों में विविध तरह के लोगों की विविध अवधारणाएँ हैं। जैसे कोई तो सूर्य को देवता मानकर उसके उत्तरायण (पूर्व से उत्तर की ओर) में गमन करते हुए भारत देश की ओर गमन के कारण तथा उसकी किरणों से सेहत और शांति बढ़ाने वाली होने के कारण; इसी तरह कोई हिन्दु समुदाय इसे धार्मिक कथा से जुड़ी घटना से जोड़ते हैं। जैसे – गंगा नदी का भागीरथ के पीछे चलकर कपिल मुनि के आश्रम से होकर सागर में मिलने से तथा उसी दिन महाभारत काल में भीष्म पितामह की देह-त्याग का दिवस आदि मान्यताओं से जोड़कर इसे मनाते हैं।

मकर-संक्रान्ति को मनाने के तरीके भी सर्वत्र अलग-अलग दिखाई देते हैं। जैसे – कोई इस पर्व को मनाने की सार्थकता गंगा-नदी में स्नान करने से मानते हैं तो कोई नये अनाज की खिचड़ी बनाकर खाने से; कोई तिल का शरीर में उबटन लगाने से तो कोई खीर खाना, दान देना तथा पतंग उड़ाना आदि कार्य करके इसे मनाते हैं। अधिकतम प्रसिद्ध मान्यताएँ नदी-स्नान, तिल-गुड़ के लड्डू खाना तथा पतंग उड़ाना आदि हैं।

इस त्यौहार की वास्तविकता और प्रायोगिक तथ्यों पर विचार किया जाये तो **यह पर्व किसी धार्मिक घटना विशेष पर आधारित न होकर पूर्णतः खगोलीय घटना मात्र है अर्थात् सूर्य का एक राशि से दूसरी राशि में प्रवेश तथा दक्षिणायन (सूर्य का दक्षिण की ओर) से उत्तरायण (उत्तर की ओर) में परिवर्तन मात्र है और कुछ नहीं।**

इससे मात्र दिन-रात्रि की हीनाधिकता में अंतर पड़ता है। दक्षिणायन में दिन छोटे तथा रात्रि बड़ी, उसी तरह उत्तरायण में रात्रि छोटी तथा दिन बड़े होने लगते हैं और इसतरह का परिवर्तन सदा से होता चला आ रहा है और भविष्य में भी होता रहेगा। इसमें नवीन क्या है?

ज्योतिषियों के आँकलन के अनुसार सूर्य की गति (रफ्तार) में भी

घटना-बढ़ना रूप परिवर्तन होता रहता है, जिससे सूर्य का मकर राशि में प्रवेश सर्वथा 14 या 15 जनवरी को संभव नहीं है, कदाचित् उसमें भी परिवर्तन होता रहता है।

प्राप्त जानकारी के अनुसार इतिहास गवाह है कि 1000 वर्ष पहले मकर संक्रान्ति 31 दिसम्बर को मनाई जाती थी। राजा हर्षवर्धन (600 ई.-647 ई.) के काल में यह पर्व 24 दिसम्बर को पड़ा था, जलालउद्दीन मुहम्मद (1542-1605) के काल में यह पर्व 10 जनवरी को पड़ा था, छत्रपति शिवाजी (1630-1680) के काल में यह पर्व 11 जनवरी को पड़ा था। इसी तरह सन् 2012 में 15 जनवरी को यह पर्व मनाया गया था। इसका कारण ज्योतिष संबंधी अनेक आँकड़े हैं, उनका विस्तार इस लेख में संभव नहीं।

उपर्युक्त इतनी विविधता के साथ वर्तमान में भी उत्तरायण के संबंध में मतभेद है। आज के ज्योतिष के अनुसार बड़े दिन अथवा जाड़े का दिन या फिर उत्तरायण का प्रारंभ 21 दिसम्बर से माना जाता है, किन्तु प्राचीन पद्धति के अनुसार रचे पंचांगों के अनुसार उत्तरायण का प्रारंभ 14 जनवरी (पौष मास) से तथा जैनदर्शन के ग्रन्थ 'त्रिलोकसार' गाथा 381 विशेषार्थ में माघ मास से उत्तरायण का प्रारंभ माना है।

इस तरह यह 'मकर-संक्रान्ति' मात्र खगोलीय घटना है, किन्तु उसमें भी मतभेद होने से इसमें क्या धरम और क्या करम ? अधिक क्या कहें एक आँकलन के अनुसार यह पर्व दिवस 5000 वर्ष बाद फरवरी माह के अंत में आयेगा। अत: सब कुछ विचारणीय!

इसी लेख में इसे मनाने के मुख्य तीन तरीके भी विचारणीय हैं, जिन पर सभी का ध्यान आकर्षित होना चाहिए। 1. गंगा स्नान, 2. तिल-गुड़ का सेवन तथा 3. पतंगोत्सव।

1. गंगा-स्नान - लोगों की मान्यता है, इस दिन गंगा-नदी में स्नान

करने से सारे पाप धुल जाते हैं। इस संबंध में खुले मन से विचार करें तो सच्चाई सबको ख्याल में आयेगी। यदि गंगा-स्नान से पाप धुलने लगे तो लोग सालभर पाप करेंगे; कत्ल करेंगे; चोरी करेंगे; परस्त्री सेवनादि करेंगे और गंगा-स्नान से सारे पाप भी धो लेंगे, फिर कानून और पुलिस प्रशासन की क्या आवश्यकता है? **पाप करो और साल भर बाद गंगा नदी में डुबकी लगाओ और निष्पाप हो जाओ! पापियों के लिए इससे अच्छा क्या होगा?**

2. तिल-गुड़ का सेवन - इस संबंध में भी अनेक लोगों की धार्मिक मान्यताएँ रूढ़ि से हैं। इस अवसर पर इनका भक्षण करना चाहिए, किन्तु इस मान्यता के साथ कि ये मात्र शारीरिक स्वास्थ्य के लिए अनुकूल हैं।

प्राप्त जानकारी के अनुसार **तिल** में **कार्बोहाइड्रेट, कैल्शियम** तथा **फास्फोरस** पाया जाता है। इसमें **विटामिन 'बी'** और **'सी'** की भी काफी मात्रा होती है। यह पाचक, पौष्टिक, स्वादिष्ट और स्वास्थ्य रक्षक है।

इसी तरह **गुड़** में भी अनेक प्रकार के खनिज पदार्थ होते हैं। इसमें कैल्शियम, आयरन और अनेक विटामिन्स भरपूर मात्रा में होते हैं। गुड़, शरीर को मजबूत करता है। शारीरिक श्रम के बाद इसके सेवन से थकावट दूर होती है। गुड़ खाने से हृदय भी मजबूत बनता है और कोलेस्ट्रॉल घटता है। तिल व गुड़ मिलाकर खाने से शरीर पर सर्दी का असर कम होता है।

मात्र यही वजह है कि मकर-संक्रान्ति के समय कड़ाके की ठंड के वक्त हमारे शरीर को गर्म रखने के लिए तिल और गुड़ के सेवन पर जोर दिया जाता है।

3. पतंगोत्सव - इससे लाभ नहीं के बराबर, किन्तु नुकसान शत-प्रतिशत प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। लाभ मात्र यही कहा है कि सुबह की

सुनहरी धूप में पतंग उड़ाने से इस ठंड के मौसम में ताजा धूप के सेवन से सर्दी में होने वाले रोगों से मुक्ति मिलती है और हमारा शरीर स्वस्थ रहता है; किन्तु पतंग उड़ाये बिना भी सुबह की धूप का सेवन किया जा सकता है।

परन्तु ठीक इसके विरुद्ध पतंग उड़ाने से नुकसान इतने अधिक हैं, जिनकी सूची (List) बनाना कठिन है। नमूने के तौर पर कुछ उदाहरण निम्न हैं -

1. माँझे के उपयोग से स्वयं की उंगलियाँ कट जाती हैं।

2. अनेकों बेजुबान पक्षियों की मौतें भी होती हैं।

3. सड़कों पर अनेकों दुर्घटनाएँ (Accident) **होते हैं।**

4. अनेकों की तो गर्दन भी कट जाती है।

5. कटी पतंग पकड़ने के चक्कर में दौड़ते समय दुर्घटना या छत से गिरकर मौत भी हो जाती है।

6. माँझे के स्पर्श से अनेक रोग भी संभव हैं।

इसप्रकार पतंगोत्सव के अनेक नुकसान देखकर तथा देश की करोड़ों-अरबों रुपयों की हानि देखकर भी लोग बिना सोचे-समझे ही इस त्यौहार को मनाते हैं, तब फिर विचार करें क्या होगा हमारे देश और समाज का ?

अंत में यही कहा जा सकता है कि इस 'मकर-संक्रान्ति' को मात्र रूढ़िवश या धर्मान्धता से न देखकर, खुले मन से और निष्पक्ष प्रायोगिक विचार करके देखें तो स्वयं का, समाज का तथा राष्ट्र का हित हुए बिना न रहेगा।

ooo

गणतंत्र दिवस

जैन संविधान : अनादि-अनंत

'संविधान' का सामान्य अर्थ होता है **शासन का स्वरूप** अथवा यह शब्द 'सं+विधान' से मिलकर बना है, जिसका अर्थ है 'सं' अर्थात् सम्यक् प्रकार से 'विधान' अर्थात् वस्तुव्यवस्था का कथन करना। संविधान के लिए 'संहिता' शब्द का भी प्रयोग किया जाता है, जिसका अर्थ है **जो सम्यक् प्रकार से वस्तुस्वरूप को व्यवस्थित करती है, वह संहिता कहलाती है।**

किसी भी प्रान्त, राष्ट्र अथवा दुनिया की व्यवस्था को व्यवस्थित संचालित करना हो तो वहाँ का स्वतंत्र निजी कानून/शासन अथवा नियमावली होना अनिवार्य है। उसके बिना सर्व कार्यप्रणाली अस्त-व्यस्त हो जाती है।

जैसे उदाहरण के लिए हमारे ही भारत देश को देख लें तो पता चले कि 26 जनवरी सन् 1950 तक भारत देश का सुव्यवस्थित संविधान नहीं था। देशवासी या तो अंग्रेजों के बनाए नियमों के अनुसार चलते थे या फिर मन-मर्जी के मालिक थे; किन्तु जब से निजी संविधान का निर्माण हुआ तब से भारत देश पूर्ण स्वतंत्रता का अनुभव करता हुआ अपनी नियमावलियों के अनुसार ही शासन का सफल संचालन कर रहा है।

कहते हैं दुनिया-भर के देशों में सबसे बड़ा, लोकप्रिय और धर्म-निरपेक्ष हमारे देश का ही संविधान है और गजब की बात तो यह है कि **यह संविधान मात्र 2 वर्ष 11 माह और 17 दिन में बनकर तैयार हो गया।** इसमें कुछ नियम तो अपरिवर्तनशील तथा कुछ परिस्थितिवश परिवर्तनीय भी हैं।

भारत के संविधान (शासन) के तीन अंग हैं -

1. व्यवस्थापिका - जो कानून का निर्माण करती है।

2. कार्यपालिका - जो कानून को लागू करती है।

3. न्यायपालिका - जो कानून का उल्लंघन करने वालों को दंडित करती है।

इसप्रकार उपर्युक्त अंगों के सुचारु संचालन में अनेक नियमावलियाँ सम्मिलित हैं, जिनके आधार से देश का सुव्यवस्थित संचालन होता है।

मुझे बात करना है जैन संविधान की, जो वस्तु के स्वभाव के समीप रहकर, उसका विधान अर्थात् कथन करता है। यही वस्तु के मूल स्वरूप को लेकर चलता है और वस्तु का स्वरूप/स्वभाव तो त्रैकालिक/शाश्वत/अनादि-अनंत है; इसलिए जैन संविधान भी अनादि-अनंत है।

इस संविधान में न तो कोई जातिवाद है, न व्यक्तिवाद और न ही सांप्रदायिकवाद की गंध भी। इस संविधान को जानना प्रत्येक जैन का ही नहीं, प्रत्येक जन का कर्तव्य है। इस संविधान/संहिता के विषय में चर्चासागर (चर्चा 173, पृ. 316) में इसप्रकार कहा है -

''संगतं हितमेतस्या, भव्यानामिति संहिता।
जिनसंबंधिनी सेयं, नाम्ना स्याज्जिन संहिता।।''

अर्थात् जो जिन अर्थात् वीतरागी जिनेन्द्रदेव से संबंध रखने वाली वस्तु-व्यवस्था है, जो भव्यजीवों को हितकारी है - ऐसी रीति-नीति ही 'जिन-संहिता' कहलाती है।

इस संविधान का निर्माण किसी व्यक्ति विशेष ने नहीं किया, न ही यह कुछ वर्षों पुराना है; क्योंकि वस्तु भी अनादि है और उसकी व्यवस्था भी अनादि है और आगे भी अनंतकाल तक वस्तु की व्यवस्था इसी तरह व्यवस्थित रहेगी, जिससे हम यह कह सकते हैं कि यह संविधान भी अनादि से है और अनंत काल तक इसी तरह बना रहेगा।

जिस तरह भारतीय संविधान के तीन अंग हैं; उसी तरह जैन संविधान में भी चार अनुयोगमयी जिनवाणी है, जो वस्तुस्वरूप के परिणमन स्वभाव की व्यवस्था करने वाली होने से **व्यवस्थापिका** है। वस्तु की कार्यप्रणाली का ज्ञान कराकर उसका पालन कराने वाली होने से **कार्यपालिका** है तथा जो उस वस्तुव्यवस्था को नहीं पहचानते तथा उसमें परिवर्तन करने का विकल्प करते हैं - ऐसे जीवों को दण्ड देने स्वरूप **न्यायपालिका** है।

जिनवाणी चार अनुयोगमयी है। 1. प्रथमानुयोग, 2. चरणानुयोग, 3. करणानुयोग और 4. द्रव्यानुयोग। इनमें प्रथमानुयोग में मुख्यता से उन महापुरुषों का कथन है, जो वस्तुव्यवस्था को जानकर अपना कल्याण कर चुके हैं। चरणानुयोग स्वयं में ही गृहस्थ और गृहत्यागी तपस्वी-मुनियों के बाह्याचरण का वर्णन करता है। करणानुयोग, जो सम्पूर्ण विश्व का क्षेत्रीय व कर्मसिद्धान्त का प्रतिपादन करता है तथा द्रव्यानुयोग; जिसमें जगत के सम्पूर्ण पदार्थों के परिणमन स्वभाव का वर्णन है।

इसतरह सम्पूर्ण जिनवाणी में चार तरह से वस्तु की व्यवस्था प्रतिपादित की है। साथ ही उसमें सर्वप्रथम वस्तु की स्थापना, उसका परिणमन करते हुए स्थिर रहना तथा स्थिर रहते हुए परिणमन करना - इस तरह का स्वरूप बताकर यह बताने का प्रयास किया है कि प्रत्येक वस्तु अपने परिणमन स्वभाव से स्वयं परिणमन कर रही है और परिणमन करते हुए स्थिर भी है; इसलिए उसमें अपनी तरफ से कोई भी परिवर्तन करने का अहं न करे तथा उसके कथंचित् परिवर्तन से दु:खी भी न हो; क्योंकि वह बदलते हुए भी स्थिर है।

इसी तरह प्रत्येक वस्तु अनंत शक्ति/गुण/वैभव से संपन्न है - ऐसा जानकर कोई किसी को भी हीनाधिक/छोटा-बड़ा न माने। साथ ही प्रत्येक वस्तु स्वतंत्र है, इसलिए कोई न तो पराधीनता का अनुभव करे और न ही किसी को पराधीन करने का विकल्प करे।

वास्तव में इस तरह की जो वस्तु की व्यवस्था है, वही स्वीकार करने योग्य है; किन्तु जो ऐसा नहीं स्वीकार करता, उसके दण्ड की व्यवस्था भी कर्मसिद्धान्त के आलोक में की गई है।

उपर्युक्त प्रतिपादन से साररूप में हम कह सकते हैं कि चार अनुयोगमयी जिनवाणी शाश्वत वस्तुव्यवस्था को बतानेवाली होने से **व्यवस्थापिका** है; प्रत्येक वस्तु के गुण-धर्मों को, उनके लक्षणों को व उनकी कार्य-प्रणाली को बतानेवाली होने से **कार्यपालिका** है तथा उस वस्तुव्यवस्था में अज्ञान व राग-द्वेषवश छेड़छाड़ का विकल्प करनेवाले को नरकादि गतिरूप दण्ड विधान तथा वस्तु को यथावत् स्वीकार करनेवाले को स्वर्ग-मोक्ष का रास्ता बतानेवाली होने से **न्यायपालिका** है।

यदि इन उपर्युक्त तीनों पालिकाओं को चारों अनुयोगों में विभाजित करें तो द्रव्यानुयोग व्यवस्थापिका के साथ कार्यपालिका भी है; क्योंकि इसमें वस्तुव्यवस्था के साथ उन वस्तुओं की कार्यप्रणाली, जैसे जीव का कार्य जानना-देखना, पुद्गल का स्पर्शादिरूप परिणमन; इसीतरह धर्मादि द्रव्यों के भी अपने-अपने कार्यरूप परिणमन का वर्णन किया जाता है।

चरणानुयोग कार्यपालिका का सहयोगी है; क्योंकि वह चाहिए की भाषा में ही जीवद्रव्य को अपने कर्तव्य-पालन हेतु चेताता रहता है; अतः चरणानुयोग को अपेक्षावश कार्यपालिका ही कहा जाना चाहिए।

इसीतरह करणानुयोग का कर्मसिद्धांत न्यायपालिका है; क्योंकि वह जीव भावों के अनुसार दण्ड व्यवस्था का विधान करता है। जो जीव जैसे शुभाशुभ भाव करता है, तदनुसार कर्मबंधन और फिर उसके फल का कथन करनेवाला होने से करणानुयोग न्यायपालिका है।

अब रहा प्रथमानुयोग, वह इन तीनों पालिकाओं के उदाहरणस्वरूप है अर्थात् जिसने वस्तुव्यवस्था को यथार्थ न जानकर राग-द्वेषरूप भाव किए, उसका फल उन व्यक्तियों को मिला - ऐसा बतानेवाला होने से तीनों पालिकाओं में व्याप्त है।

इसतरह हमने देखा कि भारतीय संविधान व जैन संविधान में बहुत कुछ साम्यता दिखाई देती है; किन्तु यदि गहराई में जाकर देखें तो दोनों में बहुत अंतर दिखाई देते हैं। जैसे भारतीय संविधान सादि-सांत है अर्थात् तात्कालिक है; किन्तु जैन संविधान त्रैकालिक है।

इसीतरह भारतीय संविधान पूर्णत: मानवीय उत्थान पर बल देता है तो जैन संविधान प्राणी मात्र के उत्थान के प्रति जागरूक है। भारतीय संविधान जहाँ भौतिक समृद्धि के प्रति समर्पित है तो वहीं जैन संविधान आत्मिक संस्कारों के बीजारोपण में सचेत है। भारतीय संविधान इहलोक की चिंता में निमग्न है तो जैन संविधान इहलोक के साथ पारलौकिक सृष्टि की संरचना हेतु कटिबद्ध है।

इनके अतिरिक्त भी भारतीय संविधान जहाँ संयोगों के संरक्षण, भोगों के संयोजन तथा अर्थ व कामरूप दो पुरुषार्थों पर बल देता है तो जैन संविधान ठीक इनके विपरीत अर्थात् त्याग की भावना, योग की मुख्यता तथा धर्म व मोक्ष - इन दो पुरुषार्थों का प्रबल पक्षधर है।

निष्कर्षरूप में देखा जाये तो जैन संविधान में बताये गए अनेक सिद्धांत प्राणी मात्र के कल्याण हेतु समर्पित हैं।

इनके अलावा भी जैन संविधान में व्यवहारपक्ष की दृष्टि से परजीवों पर दया, उनको न सताने-मारनेरूप अहिंसा; सत्य, क्षमा, शील, अपरिग्रहवाद; विशुद्ध निर्जन्तुक सात्त्विक आहार का भक्षण; सब प्राणियों से मैत्री, गुणियों में प्रमोद, दुर्जनों में माध्यस्थता, दु:खियों के प्रति करुणा भाव इत्यादि भी समाहित हैं।

जो व्यक्ति इस तरह के यथार्थ संविधान को स्वीकार करता है, वही सच्चे अनुशासन का पालनकर्ता कहलाता है। वह कभी दु:खी नहीं हो सकता।

इसलिए सभी जन जैन शासन में वर्णित वस्तु-व्यवस्था के सम्यक् विधान वाले शाश्वत संविधान को अपनाएँ - ऐसी मंगल भावना। ○○○

स्वतंत्रता दिवस

'स्वतंत्रता' हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है

संसार का ऐसा कौन प्राणी होगा जो स्वाधीनता के सुकून को तिलांजलि देकर गुलामी को गले लगाने में गौरव का अनुभव करता होगा?

मानव की बात तो दूर ही रहो, एक परिंदा भी बंद पिंजड़े में अपने पंखों की फड़फड़ाहट से पराधीनता की पीर को अनकहे शब्दों में बयां करने की कोशिश करता है।

विचारे मूकबधिर कीर-मरकट व पिपीलिका जैसे तुच्छ प्राणी भी बंधन से मुक्ति का दंभ भरने से नहीं चूकते।

ऐसा जानकर तो अब विचार करने का अवसर ही नहीं रह जाता कि दुनिया का सबसे शक्तिशाली समर्थ बुद्धिजीवी मानव पराधीनता की भ्रमित परछाई में विश्राम करने हेतु उद्यमवन्त हो सकता है।

यह सब हस्तामलकवत् एकदम सत्य होने पर भी एक प्रश्न उठता है कि दुनिया के लोग पराधीनता का अनुभव क्यों करते हैं ? न चाहते हुए भी हमारा भारतदेश परतंत्र क्यों हुआ ? और इतिहास के आँकड़ों को देखकर यूँ कहें कि विश्व के लगभग सभी देशों ने गुलामी के मंजर को महसूस किया है। इन सबका कारण आखिर कौन ?

सबसे पहले हम अपने ही भारतदेश को देखें तो पता चलता है कि इसे पहले **सोने की चिड़िया** कहा जाता था। जहाँ सत्य, अहिंसा, ईमानदारी के गीत तथा **अतिथिदेवो भवः** जैसी भावनाओं का परचम लहराया करता था।

अब कहाँ गया वो स्वर्णिम भारत, लोगों के अंदर की सच्चाई, ईमानदारी तथा अहिंसामय प्रवृत्ति। कुछ भी तो नजर नहीं आता।

लोग कहते हैं अंग्रेजों ने हमारे देश को लूटा। देश को गुलाम बनाया, वरना आज हम समृद्ध होते। उनके पास ताकत थी, वो ज्यादा पढ़े-लिखे

थे, एक थे तथा उन्होंने यहाँ **'फूट डालो और शासन करो'** की नीति को अपनाया और हमें गुलामी की यातनाओं को सहने हेतु मजबूर कर दिया।

किन्तु यह बात पूर्णत: सत्य नहीं, क्योंकि हमारी गुलामी की दास्तां इतिहास के पन्नों में पनाह लेने हेतु तभी से दस्तक दे चुकी थी, जब 15वीं शताब्दी के अंतिम चरण में पुर्तगाल देश का डॉन, माफिया किंग **'वास्को डी गामा'** की मनहूस छाया हमारे देश पर पड़ी। वह भारत में तीन-तीन बार आकर सोने की अशर्फियों से भरी करीब 40 जहाजों को भरकर ले गया। वह 23 दिसम्बर 1524 को मर गया, वरना चौथी बार फिर आता, किन्तु कितने दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश के लोगों ने उसे बहादुर नाविक और महान सैनिक जैसे शब्दों से नवाजा और उसे भारत देश के प्रथम खोजकर्ता के रूप में मान्यता दी।

उसके मरने पर भी देश के लुटने का सिलसिला थम न सका और फिर **'महमूद गजनवी'** आया, जिसने देश को लगातार 17 साल तक तक लूटा। कुल मिलाकर 70 से 80 साल **पुर्तगालियों** द्वारा लुटने पर हमारे देश को फ्रांसीसियों की नजर लग गई और उन्होंने भी 70-80 साल तक लूटा। फिर क्या था **'जो स्वयं लुटना चाहता हो, उसे कोई क्यों न लूटे ?'** इस उक्ति के अनुसार **'हॉलैण्ड'** देश से आए 'डच' ने भी देश को नहीं बक्शा।

उसके बाद बची-खुची सम्पत्ति को समेटने गोरी चमड़ी के अंग्रेज 17वीं शताब्दी के प्रारंभ में सूरत (गुज.) के रास्ते से आए और उन्होंने यहाँ 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना कर देश को पूर्णत: कब्जे में करने का प्रारूप प्रस्तुत कर दिया।

उन्होंने सूरत के बाद क्रमश: कोलकाता, मद्रास (चैन्नई), दिल्ली, आगरा और लखनऊ को अपना प्रमुख गढ़ बनाया। इस तरह 150 वर्षों के अंदर **करीब 1750 तक आते-आते हमारा देश अंग्रेजों का गुलाम हो गया।**

मुझे लगता है वह गुलामी भी संभवत: 7 वर्षों की ही होती; क्योंकि उस समय 1757 में बंगाल के **नवाब सिराजुद्दोला** ने प्लासी युद्ध में तत्कालीन अंग्रेज सेनापति रोबर्ट क्लाइव पर चढ़ाई करने हेतु आदेश दे दिया। **किन्तु जब बर्बादी अपने पूर्ण उफान पर रहती है, तब उसके मातम मनाने वाले को भी नहीं बख्शती।**

यहाँ पर भी ऐसा ही हुआ और हमारे 18 हजार सिपाहियों के रहते हुए भी बंगाल का नवाब बनने के लालची सेनापति '**मीरजाफर**' ने मात्र 300 अंग्रेज सैनिकों के सामने अपनी शिकस्त स्वीकार कर '**हमें तो अपनों ने लूटा गैरों में कहाँ दम था**' वाली कहावत सिद्ध कर दी। फिर अंग्रेजों ने 18 हजार सैनिकों सहित सिराजुद्दोला को भी यमलोक का रास्ता दिखाकर देश की आजादी को 190 वर्ष पीछे धकेल दिया।

यद्यपि ठीक 100 वर्ष बाद सन् 1857 में 30 वर्षीय युवा रानी **लक्ष्मीबाई** ने अंग्रेजों के खिलाफ जंग छेड़कर स्वाधीनता की उम्मीद की चिन्गारी जलाई; किन्तु वह भी सफलता को प्राप्त न हो सकी। उनके बाद तो देश के राजा-रानी व सैन्यशक्ति तो लगभग समाप्ति पर थी और भारतदेश अपने महान वीरों; जिनमें मंगल पाण्डेय, सुभाषचन्द्र बोस, भगतसिंह, चन्द्रशेखर आजाद व लाल-बाल-पाल जैसे देशभक्तों की कुर्बानी लेकर भी आजादी से महरूम ही रह गया।

हाँ, इतना अवश्य है कि उन्होंने अपनी कुर्बानी और मजबूत इरादों से अंग्रेजों की ताकत को कमजोर कर उनके सार्वकालिक शासन के मंसूबों पर पानी अवश्य फेर दिया। उनमें तिलकजी के '**स्वतंत्रता हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है**', बोसजी के '**तुम मुझे खून दो मैं तुम्हें आजादी दूँगा**' तथा नेहरुजी के '**पूर्ण स्वराज्य**' जैसे उद्घोष और सबमें सिरमौर अहिंसामयी गांधीजी की नीति साकार हो गयी और **15 अगस्त सन् 1947 को स्वतंत्रता हमारी झोली में आ गई।**

इसी तरह की गुलामी और स्वतंत्रता संसार के लगभग सभी देशों ने

प्राप्त की है। पराधीन होकर स्वाधीनता के आस्वादी देशों में प्राप्त जानकारी के अनुसार (Matt Rosenbegg के लेख से) सर्वप्रथम नाम जापान (660 BCE ईसा पू.), उसके बाद चाइना (2218 BCE), फिर मुख्य देश नाम फ्रांस (843 CE ई.), पुर्तगाल (1143 ई.), स्विटजरलैण्ड (1291 ई.), अमेरिका (USA, 1776), ब्राजील (1822), आस्ट्रेलिया (1901), न्यूजीलैण्ड (1907), साउथ अफ्रीका (1910) आदि तथा विश्व का सबसे अमीर देश 'कतर' (प्रति व्यक्ति औसत आय 1 लाख डॉलर) 1971 और सबसे अंत में साउथ सूडान (2011) जैसे नाम इतिहास में प्राप्त होते हैं।

विचारणीय तथ्य यह है कि सभी देश गुलाम होने से पहले भी स्वाभाविक रूप से स्वतंत्र ही थे। पराधीनता तो उनकी स्वयं की अविवेकी कमजोरी से आई। देखा जाए तो **'अपने स्वाधीन सामर्थ्य व स्वभाव को नहीं जानना, पहिचानना ही गुलामी है'** तथा स्वतंत्रता का मतलब **''अपनी स्वभावरूप सीमा के अन्दर प्रवृत्ति तथा पर सीमा से निवृत्ति ही वास्तविक स्वतंत्रता है।''**

जैनदर्शन के अनुसार जीवादि समस्त द्रव्यों का अपनी स्वभावभूत क्रिया में परिणमन तथा विभाव व परद्रव्यों से भिन्नता का अनुभवन ही सच्ची स्वाधीनता है। इस अपेक्षा से देखा जाए तो देश, दुनिया, जन-जन व कण-कण भी स्वाभाविक स्वतंत्र ही हैं।

जैसे अग्नि अपने उष्ण स्वभाव में सीमित है, जल अपने शीतल स्वभाव में सीमित है, उसी तरह जीव अपने ज्ञानादि स्वभाव में तथा पुद्गलादि अपनी मर्यादा में सीमित हों, उसी का नाम स्वावलम्बन व स्वतंत्रता है।

ध्यान रहे अपनी सीमा में सीमित रहने का नाम कमजोरी नहीं तथा स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छन्दता भी नहीं, किन्तु सच्चा अनुशासन है, आत्मानुशासन है। यदि हर परिवार, हर समाज, प्रत्येक राज्य व

प्रत्येक देश अपनी मर्यादा के अन्दर ही कार्य करे तथा बाहरी विकारी व आकर्षक शक्तियों से अप्रभावित रहकर सावधान व जागरूक होकर उनसे सुरक्षित रहे तब न तो कोई गुलाम होगा और न ही कोई किसी पर शासन ही कर सकेगा। **निष्कर्षतः अपने स्वाधीन स्वभाव व सामर्थ्य की पहिचान एवं स्वीकृति ही सच्ची स्वतंत्रता है।**

अब देखते हैं कि जीव पदार्थ व भारत देश की गुलामी तथा स्वतंत्रता एक जैसी ही नजर आती है। दोनों ही सदा से स्वाभाविक स्वतंत्र ही हैं, किन्तु हमारे देश की एक बड़ी अच्छाई व विशेषता '**अतिथिदेवो भवः**' में अतिथि की सही पहिचान न कर पानेरूप, अविवेक व अज्ञानता ही देश को ले डूबी। पुर्तगाली '**वासको डी गामा**' जैसे विकारी भावों को देशरूपी जीव ने अपनी अज्ञानतावश अतिथि के रूप में सम्मान दिया, वहीं से हमारे वतन और जीव के पतन की व्यथा स्वरूप कथा प्रारंभ हो गई।

उसने लूटा; फिर औरों ने लूटा, फिर तो लूटने वाले विदेशरूपी विभावों की संख्या बढ़ती गयी और स्वदेशरूपी जीव लुटता गया। फिर अंग्रेजों रूपी विकारों ने दस्तक दी और उनका भी स्वागत किया गया। उन्होंने तो 'फूट डालो और शासन करो' जैसे उपायों से देशरूपी जीव के लोगों में ऊँच-नीच के भेदों के समान गुणभेद व पर्यायभेद जैसे टुकड़े-टुकड़े कर दिये और सर्वत्र एकछत्र शासन बना लिया।

यहाँ देशरूपी जीव को किसी निमित्तवश '**सिराजुद्दोला**' जैसी स्वयं की शक्ति का आभास हुआ और 18 हजार सिपाही जैसे अनंत गुणों द्वारा तीन सौ सैनिकों रूपी अल्प विभावों को मूलतः नष्ट करने का अवसर प्राप्त हुआ, किन्तु सत्ता व भोगों के लोभी '**मीर जाफर**' जैसे घर में छिपे गद्दार या यूँ कहें स्वयं की विषय-भोगरूप वैभाविक कमजोरी के कारण असीम शक्ति व अनंत गुणों के निधान ने स्वल्प शक्ति युक्त विभावों के सामने समर्पण कर दिया।

जरा विचारे करें, देश की 'मीरजाफर' जैसी कमजोरी तथा एकमात्र बाहरी शक्तिस्वरूप अंग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने देश की इतनी बर्बादी की तो बताइए 150 से भी अधिक वर्षों में करीब 127 कम्पनियों का आगमन हुआ तो देश का क्या हुआ होगा ? उसी तरह जीव के एक समय के विभाव से उत्पन्न संसार दु:ख इतना भयानक है तो अनादि के अनगिनत विकारों से इसकी क्या दुर्दशा हो रही होगी ?

फिर देश को स्वतंत्र कराने के लिए 'बाई', 'नेहरु', 'शास्त्री', 'तिलक, 'राय', 'आजाद', 'बोस', 'पाण्डेय', 'सिंह' जैसे अनेक वीर योद्धाओं ने अपनी निजी बुद्धि व शक्ति के बल पर अनेक प्रयास किये, किन्तु विचार करें क्या भेदरूप प्रयास से कार्य पूर्ण हो सकता था ?

हाँ, शुरुआत तो अच्छी हुई, किन्तु अभेद (एकता) बिना काम पूर्णता को प्राप्त कैसे हो सकता था ? तभी 'गांधी' जैसे महात्मा ने देश को जोड़कर अभेद (एकता में बाँधकर) प्रयास किया और सफलता हाथ लग गई।

उसी तरह जीव ने सदा से स्वयं को भेदरूप देखा, पर्यायरूप देखा, जिससे उसे कामयाबी कैसे मिलती ? किन्तु जब कभी स्वयं की शक्ति को पहिचान कर उसे गुणभेद रूप न देखकर मात्र अभेद व अखण्ड देखने का प्रयास किया तथा एक इकाई के रूप में ही एक लक्ष्य होकर प्रयत्न किया तो सफलता मिलना कठिन नहीं रहा और फिर मिथ्यात्वस्वरूप संसार से मुक्त स्वतंत्रता को प्राप्त हो गया।

हमें एक बात और ध्यान रखनी होगी कि अंग्रेजरूपी मिथ्यात्व तो चला गया, किन्तु अभी भी बाहरी देश की करीब 4000 से भी ज्यादा कंपनियों रूपी चारित्रमोह व अन्य कर्म विद्यमान हैं, तब तक पूर्ण स्वतंत्रता नहीं कही जा सकती। अत: बाहरी कम्पनियों रूपी विषय चोर अभी भी चारों ओर विचरण कर रहे हैं, उनसे पीछा छुड़ाने हेतु अपने देश में

उत्पादन क्षमता बढ़ानी पड़ेगी, जिससे देश के प्रत्येक नागरिक को अपने ही देश में रोजगार तथा हर आवश्यक सामग्री मिल सके, तब उसकी दृष्टि देश के बाहर जायेगी ही नहीं और वह अपने देश की सीमा में सीमित होकर सर्व आवश्यक सामग्रियों की प्राप्ति से संतुष्ट होकर पूर्ण स्वावलम्बी तथा स्वाधीनता का अनुभव कर सकेगा।

उसी तरह जब यह जीव शास्त्राभ्यास द्वारा अथवा आगम के जानकार विशिष्ट मनीषियों द्वारा आत्मा के अंदर विद्यमान अनंत शक्तियाँ, अनंत गुण, अनंत धर्म व अनंत सामर्थ्य को जानेगा तथा विशेषरूप से स्वयं के आत्मा में ही अनंत सुख विद्यमान है, इसका ज्ञान होगा तो सहज ही बाहरी पंचेन्द्रिय विषयों के प्रति उदासीनता का भाव आये बिना न रहेगा।

इसतरह यह जीव स्वयं से उत्पन्न सुखसागर में निमग्न होकर चारित्रमोहनीय के उदय से उत्पन्न होनेवाली राग-द्वेषरूप विकृतियों का शमन करता हुआ 'पूर्ण स्वराज्य' के समान सम्यक् श्रद्धाजनित स्वतंत्रता के साथ सम्यक्चारित्र की पूर्णता सहित पूर्ण स्वतंत्रता का अनुभव करता हुआ केवली अवस्था को प्राप्त करके अपूर्व अनंत स्वतंत्रता का वेदन करके सिद्धावस्था को प्राप्त कर अनंत काल के लिए अव्याबाध स्वतंत्रता का आस्वादी हो जाता है।

इसप्रकार हमने देखा कि यह जीव स्वाभाविक स्वतंत्र होकर भी अपनी अज्ञानता से पराधीन था; किन्तु उस अज्ञानता का शमन करता हुआ अब व्यक्त पर्याय में भी स्वतंत्रता का अनुभव करता है।

इसलिए यह भारतदेश हो या फिर जीव, स्वतंत्रता सभी का जन्मसिद्ध अधिकार है और वह स्वयं की सामर्थ्य से ही प्राप्त की जा सकती है।

○○○

दशहरा

रावण का अपराध कितना ?

प्रतिवर्ष आश्विन मास की शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि के दिन सम्पूर्ण देश दशानन के दहनोत्सव की तैयारी में सम्मिलित होने को उत्सुक रहता है।

देश में अनेक प्रान्त, नगर, जिले, गाँव और गली-मोहल्लों के बच्चे-युवा तो क्या, बहुभाग वृद्ध समुदाय भी **रोने के कारण रावण नाम से प्रसिद्धि को प्राप्त** तथा लंका का स्वामी होने से लंकेश/लंकाधिपति अथवा दशग्रीव के विशालकाय पुतले को जलता हुआ देखकर अपने चेहरे पर मुस्कान बिखेरने को तत्पर रहता है।

इस अवसर पर देश का बहुभाग हिस्सा उस रावण के विषय में अपूर्ण जानकारी के कारण उसके 10, 20, 52 अथवा 65 फीट तक के पुतले बनाकर, उसमें विविध प्रकार का ईंधन, पटाखे आदि रखकर, उसे जलाने के गौरव से गर्व करता हुआ यह मान्यता पुष्ट करता है कि हमने ऐसा करके बुराई को जला कर अच्छाई का परचम लहरा दिया।

इसप्रकार का उत्सव मनाते हुए लोगों की प्राय: यह मान्यता रहती है कि इस दिन महान सती शीलवती सीता को हरनेवाले पापी रावण का वध श्रीराम-लक्ष्मण ने किया था। अत: यह तिथि दशमी, श्री रामचन्द्रजी की विजय के कारण **विजया दशमी** तथा **दशहरा** आदि नामों से संबोधी जाती है।

लोक मान्यता के अनुसार वह रावण महान दुष्ट राक्षस था, उसके दशमुख थे, वह मांसाहारी था, दूसरों को दु:ख देता था तथा उसके आतंक से सभी आतंकित थे; इसलिए ऐसे पापी नराधम को नष्ट करने श्री रामचन्द्रजी का अवतार हुआ था, आदि अनेक बातें प्रसिद्ध हैं। यह सब विषय जैनागम के आलोक में तो विचारणीय है ही; साथ ही रावण

के उज्ज्वल पक्ष से बहुभाग जनता अभी तक अपरिचित ही है। वह भी जानने योग्य है।

यद्यपि उपर्युक्त बुराई से लोगों को ज्यादा मतलब नहीं है; उनकी दृष्टि में रावण की सर्वाधिक बुराई तो उसके द्वारा सीता का हरण है, लेकिन सीता-हरण के पूर्व व हरण के बाद से लेकर राम व सीता के मिलन के बीच रावण की महानता व उसके चरित्र को देखने का प्रयास किसने किया ?

इसलिए इस प्रसंग पर हम जरा रावण के जीवन की विशेषताओं को अति संक्षेप में जानने का प्रयास तो करें, इसी भावना से इसे हम कुछ बिन्दुओं से देखते हैं -

1. वास्तविक परिचय - लोक मान्यता या हिन्दु आदि मान्यताओं में रावण भले ही किसी रूप में स्वीकार किया हो, किन्तु जैनदर्शन के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए तो **'दशमुख वाला होने से' वह दशानन नहीं;** किन्तु उसके गले में अपने पूर्वजों से प्राप्त मणियों का हार था, जिसमें उसके असली मुख के सिवाय नौ मुख और भी प्रतिबिम्बित होते थे - ऐसा देखकर उसका नाम **'दशानन'** रखा गया।

इसीतरह वह **राक्षस नहीं था,** किन्तु वह तो हम-तुम जैसा ही मानव था, जो रूप में भी महान सुंदर था। **उसके पूर्वज राक्षस वंश के थे** अथवा उस परंपरा में **एक राक्षस नाम का प्रभावशाली राजा हुआ** अथवा उसके वंश के वंशज राक्षस देवों के स्थानभूत **राक्षसद्वीप की रक्षा करते थे,** इसकारण उसे और उसकी परंपरा को संक्षेप में **राक्षस** कहा जाने लगा, जिसे सुनकर कालांतर में लोगों ने उसमें एक भयानक व डरावने राक्षस की कल्पना कर दी।

इसके अतिरिक्त उसका प्रसिद्ध नाम **'रावण'** है, उसके पीछे भी एक घटना है। पूर्व बैर वश, उसने बालि मुनिराज (जिन्हें लोक में

बंदररूप में माना जाता है, उनका मरण माना जाता है, जबकि वे सर्वांग सुंदर पुरुष थे व दीक्षा लेकर मोक्ष गये) को कैलाश पर्वत पर तपस्या करते देखकर, उस पर्वत को उठाने की कोशिश की; उसी समय बाली मुनिराज ने अपने पैर के अंगूठे से उस पर्वत को दबा दिया, **जिससे वह खूब चिल्लाने लगा, रोने लगा, अतः 'रावण' नाम से विख्यात हो गया।**

2. पारिवारिक परिचय - वास्तव में वह सामान्य मानवों में भी विशेष था, अनेक विद्याओं से युक्त होने से रावण, विद्याधर था। पूर्व पुण्य के कारण वह स्वयं 'प्रतिनारायण' था। पिता - रत्नश्रवा व माता केकसी थी। उसकी 18000 रानियों में मुख्य रानी 'मंदोदरी' (यह कोई राक्षसी नहीं; किन्तु रूप सौन्दर्य में स्वर्ग की देवीवत् थी), भाई भानुकर्ण (कुंभकर्ण) यह कोई सुरापायी, 6-6 माह सोनेवाला नहीं; किन्तु भानु अर्थात् सूर्यवत् तेजस्वी, दूसरा भाई विभीषण (सौम्य सूरत वाला, ज्ञानी, साधु प्रकृति का अणुव्रती) तथा बहिन चन्द्रनखा (इसका मुख पूर्ण चन्द्रमा के समान था; किन्तु जगत ने उसका नाम सूर्पणखा रखा और उसे राक्षसी बताया) थी।

इनके अलावा रावण के दो प्रतापी पुत्र थे - इन्द्रजित् और मेघवाहन (मेघनाथ)।

इन सबके अतिरिक्त यह जानकारी अजैन तो क्या जहाँ तक जैनों को भी नहीं रहती है कि **वह रावण** कर्णकुण्डल नामक नगर के राजा पवन पुत्र **हनुमान** (अन्य नाम श्रीशैल - जो विद्याधरों का राजा कामदेव, सभी नरों में सुंदर, जिसे लोक में अजानकारीवश बंदर के रूप में प्रसिद्ध कर दिया) **का मामा श्वसुर** (रावण की बहिन चन्द्रनखा की बेटी अनंगकुसुमा का पति हनुमान) था तथा वह रावण किष्किन्ध नामक नगर में विद्याधरों का राजा **सुग्रीव** (बाली का छोटा भाई) का जीजा (सुग्रीव की बहिन श्रीप्रभा का पति रावण) था। (नोट - सुग्रीव और हनुमान भी परस्पर में संबंधी थे अर्थात् सुग्रीव हनुमान के श्वसुर थे, सुग्रीव की पत्नी तारा,

उनकी बेटी पद्मरागा का विवाह हनुमान से हुआ था)। इसतरह परस्पर में ये सभी एक-दूसरे के पारिवारिक संबंधी थे।

इसमें एक और विशिष्ट तथ्य जानने योग्य है कि ये **हनुमान-सुग्रीव आदि वानर (बंदर) नहीं थे;** किन्तु वानरवंशी विद्याधर थे; उनके पूर्वजों में प्रमुखरूप से राजा श्रीकण्ठ का नाम आता है, जो कर्मयोग से सहज ही मानव जैसे दिखनेवाले बंदरों के प्रति प्रेम रखते थे तथा उनके साथ क्रीड़ा करते (खेलते) थे, उस कारण उनकी परंपरा में अन्य राजाओं ने अपनी ध्वजाओं में, महलों के शिखरों पर, छत्रों आदि में **वानर के चिह्न अंकित करा दिये, जिससे वे वानरवंशी कहलाये।**

3. रावण का चरित्र - वास्तव में देखा जाये तो रावण इतना बुरा नहीं था, जितना लोक में बुराई के नाम पर उसे ही दुनिया का सबसे बड़ा खतरनाक खलनायक सिद्ध कर दिया; जबकि हिन्दुओं के ग्रन्थों में भी उसे महान पुरुष, चारों वेदों का ज्ञाता, विशिष्ट राजनीति मर्मज्ञ व धार्मिक प्रकृति का बताया गया है।

यदि जैन मान्यता के अनुसार रावण के चरित्र की विशेषताएँ जानने का प्रयास करें तो वे अनगिनत होंगी; उनमें खास बात तो यह है कि **वह पक्का जिनधर्मी, अहिंसक भावनावाला, बड़ों का सम्मान करने वाला, स्त्रियों के प्रति अच्छी भावना रखनेवाला, समय पाकर अनेकविध तीर्थयात्रा करनेवाला तथा लंका में ही, जो भव्य शांतिनाथ जिनालय था; उसमें पूजा-भक्ति करनेवाला धार्मिक व्यक्तित्व का धनी था।**

धार्मिक निष्ठा का एक महान उदाहरण तभी मिल गया, जब उसने बाली मुनिराज को कैलास पर्वत उठाकर विचलित करने की चेष्टा की थी। जब वह अपने कार्य में असफल हुआ और पर्वत के नीचे दबने से उसका मद चूर-चूर हो गया, तब **उसने उन बाली मुनिराज की परम भक्ति की, उस भक्ति में उसने अपनी भुजा की नाड़ीरूपी तन्त्री को**

खींचकर उससे वीणा बनायी और सैंकड़ों स्तुतियों द्वारा गुणगान किया। **- (पद्मपुराण, भाग-1, नवम पर्व, श्लोक 176)**

4. प्रतिज्ञा का निर्वहन - एक समय की बात है कि रावण एक बार श्री अनंतबल केवली के दर्शन करने गया, वहाँ अनेक मनुष्य, तिर्यंच व देव, भगवान का उपदेश ग्रहण कर रहे थे तथा उपदेश को प्राप्त कर अपनी शक्ति अनुसार अणुव्रत-महाव्रतों को अंगीकार कर रहे थे। रावण यह देख विचार रहा था कि 'मेरा भोजनादि शुद्ध-सात्त्विक है; किन्तु मुझे किसी भी तरह के अणुव्रतादि लेने के भाव उत्पन्न नहीं हो रहे हैं; फिर भी कोई नियम तो अवश्य लेना चाहिए' - ऐसा विचार करके रावण ने कहा - 'हे भगवन्! **जो परस्त्री मुझे नहीं चाहेगी, मैं उसे ग्रहण नहीं करूँगा,** मैंने यह दृढ़ नियम लिया है।

- (पद्मपुराण, भाग-1, पर्व-14, श्लोक-371)

इसतरह रावण द्वारा लिया गया कठोर नियम उसकी सच्ची भावना को दर्शाता है। खास बात तो यह है कि उस नियम का पालन उसने जीवन पर्यंत किया। परस्त्री के प्रति रावण की भावना कितनी अच्छी थी, इसका एक स्पष्ट उदाहरण शास्त्रों में आता है।

एक समय की बात है दुर्लंघ्यपुर नामक नगर के लोकपाल 'नलकूबर' की पत्नी उपरम्भा थी, जो बचपन से ही रावण के रूप पर आसक्त थी, समय पाकर जब उसने अपनी चेष्टा रावण के समक्ष प्रस्तुत की; उस पर रावण के महान विचार अनुकरणीय हैं - ''**चाहे विधवा हो, चाहे पति सहित हो, चाहे कुलवती हो और चाहे रूप से युक्त वैश्या हो, परस्त्री मात्र का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए।**'' तथा हे भद्रे! (उपरम्भा) दूसरे मनुष्य के मुख की लार से पूर्ण तथा अन्य मनुष्य के अंग से मर्दित जूठा भोजन खाने की कौन मनुष्य इच्छा करता है?

- (पद्म पुराण, भाग-1, पर्व-12, श्लोक-124 व 126)

इसीतरह रावण ने उपरम्भा को और भी उपदेश दिया, जो महापुरुषों

को भी एक विशिष्ट संदेश जैसा है। रावण ने कहा – ''कामसेवन के विषय में मेरे और इसके (पति नलकूबर के) साथ उपभोग में विशेषता ही क्या है ? इस कार्य के करने से मेरी कीर्ति मलिन हो जायेगी और मैंने यह कार्य किया है; इसलिए दूसरे लोग भी यह कार्य करने लग जायेंगे। तुम राजा आकाशध्वज और मृदुकान्ता की पुत्री हो, निर्मल कुल में तुम्हारा जन्म हुआ है, अतः शील की रक्षा करना ही योग्य है। रावण के ऐसा कहने पर वह लज्जित हुई और प्रतिबोध को प्राप्त हो, अपने पति में ही संतुष्ट हो गयी।''– **(पद्म पुराण, भाग–1, पर्व 12, श्लोक 149–152)**

ऐसी एक घटना और है, जो रावण को परस्त्रियों के प्रति उत्तम चरित्रवाला सिद्ध करती है।

एक समय जब पाताल पुण्डरीक नगर के निवासी राजा वरुण को हनुमान के विशेष सहयोग से रावण ने हरा दिया, तभी विशेष धार्मिक होने पर भी भानुकर्ण (कुंभकर्ण) क्षणिक कषायवश वहाँ की अनेक स्त्रियों को पकड़ कर ले आया। ऐसा देखकर रावण ने भानुकर्ण से कहा – 'अहो ! जो तू कुलवती स्त्रियों को बन्दी के समान पकड़कर लाया है, यह तूने अत्यन्त दुश्चरित कार्य किया है, इन बेचारी भोली–भाली स्त्रियों का इसमें क्या दोष था, जो तूने व्यर्थ ही इन्हें कष्ट पहुँचाया है, जो चेष्टा मुग्धजनों का पालन करनेवाली है, शत्रुओं का नाश करनेवाली है और गुरुजनों की शुश्रुषा करनेवाली है, यथार्थ में वही चेष्टा महापुरुषों की कहलाती है। ऐसा कहकर उन्हें शीघ्र ही छुड़वा दिया।'

– (पद्म पुराण, भाग–1, पर्व 21, श्लोक 84–87)

5. हनुमान आदि द्वारा रावण की प्रशंसा – जब हनुमान सीता का पता लगाने हेतु लंकापुरी पहुँचे, वहाँ सीता को देखकर बोले – 'यह लंकापुरी का राजा रावण दयालु है, विनयी है, धर्म–अर्थ–कामरूप त्रिवर्ग से सहित है, धीर है, हृदय से अत्यंत कोमल है। सौम्य है, क्रूरता रहित है और सत्यव्रत का पालन करनेवाला है तथा निश्चित ही वह मेरी बात

मानेगा और तुम्हें मेरे लिए सौंप देगा (छोड़ देगा), इसे अपनी लोकप्रसिद्ध उज्ज्वल कीर्ति की भी तो रक्षा करनी है, अत: यह विद्वान (सर्वशास्त्र विशारद) लोक अपवाद से बहुत डरता है।'

- (पद्म पुराण, भाग-2, पर्व-53, श्लोक 86-88)

इसीतरह पूर्वोक्त रावण द्वारा हारे हुए वरुण द्वारा रावण की प्रशंसा इसतरह की गई। वरुण ने हाथ जोड़कर कहा कि 'संसार में आपका पुण्य विशाल है, जो आपके साथ बैर रखता है, वह मूर्ख है। अहो ! यह तुम्हारा बड़ा धैर्य है, यह मुनि के धैर्य के समान हजारों स्तवन करने योग्य है कि जो तुमने दिव्य रत्नों[1] का प्रयोग किए बिना ही मुझे जीत लिया। यथार्थ में तुम्हारा शासन उन्नत है।

- (पद्मपुराण, भाग-1, पर्व-19, श्लोक 92-93)

6. रावण की विशेषताएँ - वास्तव में देखा जाए तो रावण और भी अनेकविध विशेषताओं से परिपूर्ण था। पुराणों में यदि गहराई से गोते लगाएँ तो पता चले कि वह वास्तव में क्या था ? उसने तीन खण्ड पर अपना राज्य स्थापित करने का प्रयास किया, उस समय उसने माहिषमती के राजा सहस्त्ररश्मि को युद्ध में परास्त कर, उसे जीवित छोड़ दिया, उस सहस्त्ररश्मि ने दिगम्बरी मुनि दीक्षा ले ली।

इसीतरह राजपुर नगर के राजा मरुत्वान् की नगरी में स्थित यज्ञशाला में बँधे पशुओं को रावण ने छुड़ाया और राजा मरुत्वान् को समझाकर क्षमा कर दिया।

इनके अतिरिक्त राजा वरुण को हराकर क्षमा किया, अपने मौसेरे भाई वैश्रवण को हराया, उसने दीक्षा ले ली; नलकूबर को हराया, उसे क्षमा किया, महा योद्धा सहस्त्रार के पुत्र इन्द्र को हराया, उसे छोड़ा; उसने दीक्षा लेकर मोक्ष प्राप्त किया इत्यादि रावण ने अपने शत्रु समूह को हराकर, उन्हें सही रास्ता दिखाया।

1. रत्नों - चूँकि मूल में भी 'रत्नों' शब्द है; यदि वहाँ 'अस्त्रों' शब्द होता तो भाव समझना सरल हो जाता।

उपर्युक्त सभी विशेषताओं से उसकी महानता सिद्ध होने में शंका रहने की संभावना नहीं दिखती। यदि कदाचित् हो तो और आगे देख सकते हैं।

7. सीता के प्रति कथंचित् अनासक्ति - जब रावण अपने दामाद खरदूषण (रावण की बहिन चन्द्रनखा का पति) और लक्ष्मण के बीच चल रहे युद्ध में खरदूषण के सहयोग हेतु जा रहा था, उसी समय रास्ते में महासुंदरी सीता को देखकर, उसका मन धर्मबुद्धि से हीन, विवेकशून्य व कामभाव से पीड़ित हो गया और उसे छल द्वारा हरण करके ले जाने लगा, तब सीता को रुदन करते देख, उसका मन सीता के प्रति विरक्त-सा हो गया। वह विचार करने लगा कि इसका मन कहीं और लगा है, इसके हृदय में मेरे प्रति आदर ही क्या है ? उसी समय उसे अपनी परस्त्री के प्रति प्रतिज्ञा का स्मरण हो गया और उसने सीता को गोद से हटाकर समीप बैठा दिया। - **(पद्म पुराण, भाग-2, पर्व-44, श्लोक 92-100 का सार)**

इसी तरह जब रावण सीता को मनाने जाता है और सीता नहीं मानती है तो रावण कहता है - 'हे देवि ! मुझ पापी ने तुम्हें छल से हरा था, सो क्षत्रिय कुल में उत्पन्न हुए सत्पुरुषों के लिए क्या यह उचित है ? जान पड़ता है किसी अवश्यंभावी कर्म की यह दशा है अथवा परम स्नेह और सातिशय मोह का यह परिणाम है। **- (पद्म पुराण, भाग-3, श्लोक 34-36)**

तदनन्तर दु:खी रावण और विचार करता है कि 'अहो ! मुझे बार-बार धिक्कार है, मैंने यह क्या निंदनीय कार्य किया, जो परस्पर प्रेम से युक्त इस मिथुन (राम व सीता) का विछोह कराया। मैं अत्यंत पापी हूँ, बिना प्रयोजन ही मैंने साधारण मनुष्य के समान सत्पुरुषों से अत्यन्त निन्दनीय अपयशरूपी मल प्राप्त किया है। मुझ दुष्ट ने कमल के समान शुद्ध विशाल कुल को मलिन किया है। हाय-हाय मैंने यह अकार्य कैसे किया ?' **- (पद्म पुराण, भाग-3, पर्व 71, श्लोक 51-53)**

ऐसा विचार कर उसने **सीता को वापस करने का विचार किया, किन्तु मान कषाय वश** यह भाव आया कि राम-लक्ष्मण को हराकर

सीता को ससम्मान लौटाऊँगा। इसीतरह युद्ध के अंतिम चरण में वह पुन: मंदोदरी के सामने स्वयं को धिक्कारता है और अपने इस कार्य को अधम कार्य कहता है। – (**पद्म पुराण, भाग-3, पृ. 45**)

इसप्रकार उपर्युक्त विचारों से उस रावण की चित्तवृत्ति स्वत: ही स्पष्ट हो जाती है।

8. रावण का अपराध – अब हम स्वयं ही विचार करें कि रावण का अपराध कितना है ? **यदि कहें तो चुल्लू भर मात्र है** तो इसमें कोई आश्चर्य या पक्षपात नहीं; क्योंकि उसकी परस्त्री के प्रति भावना, उसके शील की सुरक्षा, उसके घर में रहने पर भी तथा सर्वशक्ति सम्पन्न होने पर भी उसने सीता को हाथ भी नहीं लगाया। उसके मन में एक बार पाप भाव तो आया; किन्तु इतना बड़ा नहीं कि वह अपनी प्रतिज्ञा को भी भुला दे। वह अपनी प्रतिज्ञा में दृढ़ था।

हाँ, यह बात अवश्य है, अपराध तो अपराध है; वह अनुकरणीय नहीं, किन्तु जितना अपराध है; सजा भी उतनी ही होना चाहिए, उससे अधिक नहीं।

9. हनुमानादि रावण के विरोध में, कैसे ? – चूँकि यह बात तो स्पष्ट हो चुकी है कि हनुमान, सुग्रीव आदि रावण के ही संबंधी थे, तथापि वे श्रीराम के साथ कैसे हो गए, यह बात ख्याल में नहीं आती।

वास्तव में देखा जाये तो पापोदय में अच्छा करने पर भी सबकुछ विपरीत हो जाता है और पुण्योदय में बुरा करने पर भी सबकुछ अनुकूल हो जाता है और यदि पापोदय के साथ वर्तमान में पाप परिणाम हों तो फिर कहना ही क्या ?

इधर रावण के साथ भी ऐसा ही हुआ, पूर्व का पापोदय तथा वर्तमान में शीलवती सीता का हरण करके नवीन पाप अर्जित किया। यद्यपि पाप लघु ही था; **किन्तु बड़े व्यक्ति के द्वारा किया गया लघु पाप भी बड़ा**

ही कहलाता है; कारण है कि उसके अनुयायी, उसे आदर्श मानकर निर्भय हो, उसका अनुसरण करते हैं।

यदि बाह्य निमित्त की दृष्टि से देखें तो एक तरफ रावण ने जो लोकापकारी कार्य किया सो वो तो है ही, साथ ही रावण के शत्रुपक्ष के श्रीराम ने सुग्रीव का राज्य व पत्नी छीननेवाले सुग्रीव वेष धारी साहसगति को युद्ध में मारकर सुग्रीव को पुनः राज्य दिलवाया, जिससे सुग्रीव राम के कृतज्ञ होकर उनके सहायक बन गए।

दूसरी तरफ हनुमान की एक पत्नी रावण की बहिन की बेटी थी; किन्तु यह पक्ष थोड़ा अधार्मिक हो गया था तथा हनुमान की दूसरी पत्नी सुग्रीव की पुत्री थी और यह पक्ष सत्य की ओर था, इसलिए जो हनुमान रावण का अनन्य सहयोगी था, वह श्रीराम के पक्ष में चला गया। इसीतरह विभीषण आदि भी सत्यपक्ष की ओर सम्मिलित हो गए।

10. परिणामों की विचित्रता व फल - इसे आश्चर्य मानें या वस्तुस्थिति ? कि अनेक जीव, जिनका कहाँ-कहाँ जन्म हुआ, किसी संयोगवश परस्पर में लड़े और फिर अपने परिणामों के अनुसार सब अपने स्थान चले गये।

तात्पर्य यह है कि प्रतिनारायण रावण की, **नारायण लक्ष्मण द्वारा मृत्यु के पश्चात् परिणामों के अनुसार रावण, सीता हरण के कारण, मान कषाय के कारण तथा मुख्य तो इतने वैभव के साथ भोगों की अवस्था में मरण होने से नरक गया। राम, हनुमान, सुग्रीव आदि तथा कुंभकर्ण, इन्द्रजित् व मेघनाथ ये सभी मुनि होकर मोक्ष गए। सीता, मंदोदरी, चन्द्रनखा आदि आर्यिका दीक्षा लेकर स्वर्ग में गयीं।**

इससे सिद्ध होता है कि **हमारे स्वयं के परिणाम ही सदा हमारे साथ हैं और अन्य कोई किसी का साथी नहीं।**

11. दशानन दहन एक कुरीति - इतना सब जान लेने के बाद यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि रावण का अपराध जितना है, उससे अधिक

उसमें गुणों के दर्शन दिखाई देते हैं - ऐसा जानकर उसके प्रति इतनी द्वेषबुद्धि ठीक नहीं।

वैसे भी कहा जाता है कि **'घृणा पाप से करो, पापी से नहीं'** इसके अनुसार तो रावण का एक अल्प-सा अपराध है तो उस अपराध को दूर करें, उसे तो दण्ड मिल ही चुका है, अब हमारे द्वारा उसके पुतले जलाने से अपराध तो नष्ट नहीं होगा। मात्र विविध प्रकार का लकड़ी-कंडे-चारा आदि ईंधन ही जलकर नष्ट होगा और उसमें जलनेवाले पटाखों से अनेक जीवों की हत्या होने से पाप बंध होगा तथा पुतले दहन के समय हमारे साथ भी दुर्घटना घट सकती है।

रावण का पुतला जलाने के पूर्व जरा एक कठोर बात और ध्यान में रखना चाहिए कि उस रावण से जितना अपराध हुआ, क्या अभी वर्तमान में वैसे अपराधी नहीं हैं ? यदि सूची बनाई जाये तो हजारों-लाखों लोगों पर रावण से भी अधिक अपराधों का आरोप लग जायेगा। फिर किस-किसके पुतले जलाये जायेंगे ?

अरे! जरा हम विचार तो करें कि लड़नेवाले तो कदाचित् मित्र बन गए, सीता का जीव स्वर्ग से जाकर रावण को संबोधन देने गया और आगे चलकर रावण का जीव तो तीर्थंकर बननेवाला है और सीता उसकी गणधर, रामचन्द्रजी तो पहले ही मोक्ष चले गये; लेकिन हम इस बात से अनजान रहकर व्यर्थ की कषायें करके अपने हाथों नरक के द्वार खोल रहे हैं।

वास्तव में तो दशहरे के दिन सभी को यह संकल्प करना चाहिए कि जिस कारण रावण की ये दुर्दशा हुई, हम भी वह कार्य नहीं करेंगे। पराई स्त्री को माँ-बहिन की नजर से देखेंगे, विभीषण आदि जैसा सच्चाई का पक्ष लेंगे तथा राम-हनुमान आदि जैसे मुनि बनकर सर्व परिग्रह के त्यागी होकर भगवान बनने की भावना मन में स्थापित करेंगे, तभी हमारा वह दिन सार्थक होगा। ○○○

'होली' की वास्तविकता

मार्च महीने में आने वाले होली के त्यौहार को मनाने का इंतजार जनमानस को रहता है। जिसमें भारतीय, नेपाली तथा विदेशों में रहने वाले भारतीय भी इस पर्व को मनाने में अति उत्साहित रहते हैं।

कई लोग तो ये भी नहीं जानते कि ये पर्व क्यों मनाया जाता है ? बस, माहौल देखकर जात-पाँत के भेदभाव के बिना हर एक जाति व वर्ग के लोग एक-दूसरे को रंग या गुलाल लगाकर मनोरंजन में मस्त हो जाते हैं।

वैसे यह पर्व मुख्यता से हिन्दुओं का कहा जा सकता है, क्योंकि उनके अनुसार यह पर्व हिरण्यकश्यप वध, होलिका दहन, कृष्ण द्वारा पूतना वध, राक्षसी ढूंढी वध, कामदेव का पुनर्जन्म तथा प्रथम मानव मनु के जन्मोत्सव के कारण 'बुराई पर अच्छाई की जीत' के रूप में मनाया जाता है।

इसकी पुष्टि हेतु हिन्दु धर्म पुराणों में नारद पुराण, भविष्य पुराण तथा जैमिनी के पूर्व मीमांसा सूत्रों में भी होली प्रसिद्ध है। रामायण काल में होली की चर्चा कदाचित् है, किन्तु महाभारत युग में तो राधा-कृष्ण की होली को कौन नहीं जानता ?

इतिहास गवाह है कि मुस्लिम सम्प्रदाय की मान्यता कुछ भी रही हो, किन्तु यह भी होली के रंग में रँगा रहा है। मुगल शासकों में विख्यात अकबर (1542-1605) और जोधाबाई की होली इतिहास के पन्नों में नजर आती है। उसी परम्परा में जहांगीर (1605-1627) और नूरजहाँ से लेकर अंतिम मुगल बादशाह बहादुर शाह जफर (1775-1862) तक होली के रंग में भंग नहीं पड़ा।

कर्नाटक के विजयनगर की राजधानी हंपी में तथा महाराष्ट्र के अहमदनगर में 16वीं शताब्दी की कलाकृति तथा 17वीं शताब्दी में

राजस्थान के मेवाड़ की चित्रावलियों में महाराणा प्रताप का होली खेलते हुए विहंगम दृश्य चर्म चक्षुओं से ओझल नहीं होता।

इनके अतिरिक्त संस्कृत तथा हिन्दी साहित्य भी होलिकोत्सव से अछूता नहीं रहा। भागवत् महापुराण में; कालिदास, माघ व भारवि की कृतियों में; चंदबरदाई के महाकाव्य में; इसीतरह आदिकाल, भक्तिकाल तथा रीतिकाल के कवियों ने भी होली तथा वसंतोत्सव के गीत गाये हैं।

आधुनिक हिन्दी कहानियों में भी प्रेमचन्दजी, प्रभु जोशी, जितेन्द्र शर्मा, ओमप्रकाश अवस्थी तथा स्वदेश राणा ने भी होलीकोत्सव को जगह दी है।

संगीत में भी 'धमार', 'ठुमरी', 'चैती', 'दादरा' तथा 'कथक' नृत्य में भी होली की छटा रंग बिखेरती हुई नजर आती है।

भारत के अलग-अलग प्रान्तों में भी अपनी निजी मान्यतानुसार होलिकोत्सव को भिन्न-भिन्न रूपों में स्वीकारा गया है।

यूपी तथा **बरसाने** में '**लठमार**', **कुमाऊँ** में '**गीत बैठकी**', **हरियाणा** में '**धुलंडी**', **बंगाल और उड़ीसा** में '**डोल-पूर्णिमा**', **महाराष्ट्र** में '**रंचपंचमी**', **गोवा** में '**शिमगो**', **पंजाब** में '**होला-मोहल्ला**', **तमिल** में '**कमन पोडिगई**', **मणिपुर** में '**याओसांग**', **कर्नाटक** में '**कामना हव्वा**', **गुजरात** में '**गोविन्दा होली**' **छत्तीसगढ़** में '**होरी**', **मध्यप्रदेश** के मालवा अंचल में '**भागोरिया**', **बिहार** में '**फागुआ**', **राजस्थान** में '**माली**', '**गैर**' व '**डोलची**' आदि नामों से होलिकोत्सव मनाया जाता है।

ये उपर्युक्त विवरण इसलिए दिया गया कि हम सर्वत्र देख लें कि साहित्य, संगीत, कला, इतिहास, भूगोल, कथा-पुराण आदि कहीं पर भी जैनों की होली का उल्लेख नहीं।

जैनों के निजी धार्मिक ग्रन्थों में भी 'होली' नाम का कोई शब्द भी नहीं। इससे सिद्ध है कि यह पर्व किसी भी दृष्टि से जैनों का नहीं; किन्तु

गजब है कि आज लगभग सारा जैन समुदाय होलिका दहन और रंगोत्सव में लगा हुआ है। ऐसा करने से अन्य धर्म और उनकी मान्यताओं की अनुमोदना होने से घोर मिथ्यात्वरूपी महापाप का बंध होता है।

जैनों का होली की तरफ इतना आकर्षण देखकर उन्हें सन्मार्ग पर लाने की भावना से ओतप्रोत जैन आध्यात्मिक कवियों ने कदाचित् कुछ इस तरह की होली की चर्चा की है -

''आत्मा ने आत्मा को आत्मा के आश्रय से,
होली खेलने को निज घर में बुलाया है।
निज परिणति बोली आओ पिया खेलें होली,
मिथ्यात्व राग-द्वेष को एक पल में धुलाया है।। आत्मा ने..''

जैनों के लिए यही एक मात्र होली हो सकती है, जो सर्व बुराइयों से दूर सर्वोत्तम अच्छाई और सुख की प्रदाता है।

जैनेतर लोगों की प्राचीन और वर्तमान होली पर भी यदि समीक्षात्मक चर्चा की जाये तो अनेक तथ्य सामने आते हैं जो कि विचारणीय अवश्य हैं।

प्राचीन काल में अच्छाई और सच्चाई की जीत की बधाई देने हेतु परस्पर में पुष्पों की या उनसे निकाले गए रंगों की बौछारों से सम्पूर्ण वातावरण सुगंधित होकर सबके मन, वाणी व तन को भी स्वास्थ्यवर्धक होता था; किन्तु आज उस होली के वातावरण ने इस तरह का विकराल रूप धारण किया है, जिससे किसी को भी लाभ नहीं; परन्तु नुकसान ही सर्वत्र दिखाई दे रहा है।

सर्वप्रथम होलिका दहन के लिए हजारों-लाखों वृक्षों की कटाई से प्राप्त लकड़ियों की खपत से पर्यावरण प्रदूषण अत्यधिक मात्रा में बढ़ रहा है। इसके अतिरिक्त धुलेंडी के दिन लोगों को कितने नुकसान उठाने पड़ते हैं, जिनकी सूची बनाना भी दुष्कर है।

इस रंगोत्सव से होनेवाली कुछ मुख्य हानियाँ निम्नानुसार हैं -

1. रंगों में केमिकल होने से चर्म रोगों की उत्पत्ति संभव।
2. आँखों में रंग चले जाने से दृष्टिहीनता का खतरा।
3. कपड़े गंदे होने पर धुलाई हेतु अत्यधिक सोडे की खपत।
4. शराब व भाँग के प्रयोग से आंतरिक रोगों को आमंत्रण।
5. आपस में झगड़े तथा परस्पर में पूर्व दुश्मनी को भुनाने की कोशिश।
6. अश्लीलता के प्रदर्शन से समाज पर दुष्प्रभाव।
7. महिला वर्ग की शील मर्यादा का उल्लंघन व असुरक्षितता का भय।
8. पानी के अत्यधिक प्रयोग से समाज, राष्ट्र व देश पर जल संकट।
9. छोटे-बड़े की मर्यादाओं का उल्लंघन।
10. देश के स्वच्छता अभियान के विरुद्ध गंदगी का आह्वान।

ऐसा सत्स्वरूप जानकर एक बार फिर सोचें -

होली क्या है किसकी है और कैसे मनायें।
समाज, राष्ट्र व देश की सुरक्षा का मन बनायें।।
यह पर्व तो वास्तविक खुशहाली का प्रतीक है।
और होली तो बुराई पर अच्छाई की जीत है।।
सच्ची होली मनाने वाले इस युग से चले गये।
वर्तमान की होली से अच्छे-अच्छे लोग छले गये।।
वास्तव में अध्यात्म की होली ही सबसे सटीक है।
मिथ्यात्व व राग-द्वेष की हार में ही आत्मा की सच्ची जीत है।।

○○○

समर्पण द्वारा प्रकाशित साहित्य

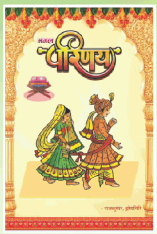

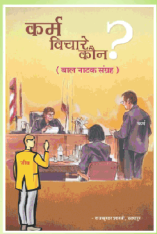

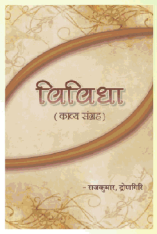

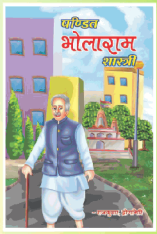

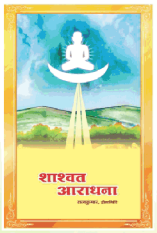

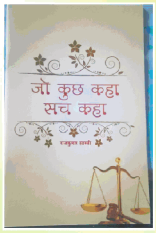

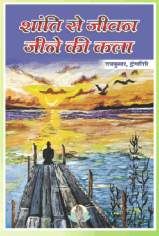

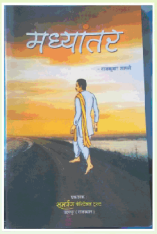

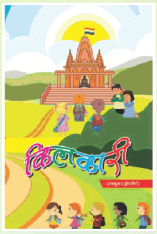

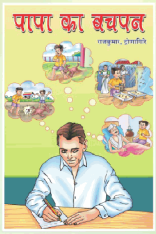

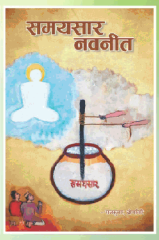

संस्कार तीर्थ

शाश्वत धाम

उदयपुर

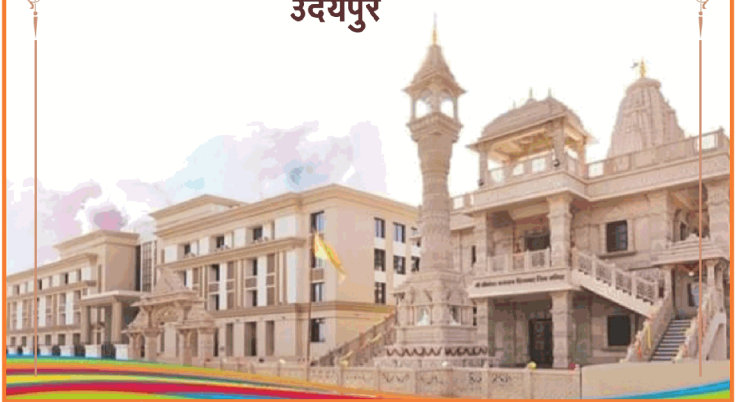

श्री कुन्दकुन्द कहान शाश्वत पारमार्थिक ट्रस्ट